श्रावस्ती का राजहंस

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

श्रावस्ती का राजहंस

प्रथम संस्करण – सितम्बर 2018

मूल्य : 30/–

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत – श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,

श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड,

गंगाशहर, बीकानेर–334401 (राज.)

दूरभाष : 0151–2270261, 3292177

visit us : www.sadhumargi.com

e-mail : absjsbkn@yahoo.co.in

ISBN : 978-93-86952-25-7

मुद्रक :

विजय प्रिंटिंग प्रेस

रतलाम म.प्र.

मो. 98676–72079, 93297–66551

प्रकाशकीय

श्रावस्ती का नाम कौन नहीं जानता। गौरवशाली श्रावस्ती। प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण श्रावस्ती। वह श्रावस्ती जिसका नाम जैन धर्म के इतिहास में दर्ज है। वह श्रावस्ती जहां भगवान महावीर का समवसरण हुआ था। वही श्रावस्ती जहां भगवान महावीर के समवसरण ने इतिहास रच दिया।

कई घटनाओं की गवाह रही है श्रावस्ती। कौन सी घटना कब घटी, उन घटनाओं के लिए कौन से कारण जिम्मेदार रहे, इन्हीं सब पर प्रकाश डालती है यह पुस्तक **'श्रावस्ती का राजहंस'**। श्राावस्ती में घटी महत्त्वपूर्ण घटनाओं में एक घटना रही है विवाह बन्धन में बंधकर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करके प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षित होकर मोक्ष प्राप्त करने वाले दम्पत्ति मणिभद्र एवं रत्नमाला की जीवन चर्या की। उनके आदर्श त्याग की। इसी घटना को केंद्र में रखकर लिखे गये इस लघु उपन्यास को शासन प्रभावक श्री धर्मेश मुनि जी म.सा. द्वारा सरल शब्दों में लिखा गया है। यह पुस्तक पाठकों को भगवान महावीर के समवसरण के आस–पास घटे सम्पूर्ण घटनाक्रमों से अवगत कराती है।

जैन धर्मावलम्बियों के साथ ही इतिहास में रुचि रखने वालों के लिए ऐतिहासिक घटनाओं के दृष्टिकोण से यह पुस्तक अच्छी साबित होगी ऐसा साधुमार्गी पब्लिकेशन का विश्वास है। इसे पढ़कर कोई भी कम शब्दों में अधिकतम जानकारी प्राप्त कर सकता है।

पुस्तक के प्रकाशन में गलतियों से बचने का पूरा प्रयास किया गया है, फिर भी प्रकाशन में किसी प्रकार की त्रुटि हो गई हो तो हम क्षमा प्रार्थी हैं। हम चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे हम भविष्य में उनसे बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहो भाव

हे पितृ तुल्य संघ ! हे आश्रयदाता संघ !

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप–त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक **''श्रावस्ती का राजहंस''** के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

– अनुमोदक –

श्री गोपीचंद मांगीलाल जीवराज छल्लानी परिवार

गंगाशहर, चेन्नई

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

प्रथम परिच्छेद

जैन वाङ्मय में श्रावस्ती नगरी का अपने आप में प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण गौरव रहा हुआ है। वहाँ के गगन चुम्बी प्रासाद, उसके आस–पास ही बड़े बड़े प्रतिष्ठित राजपुरुषों, श्रेष्ठिवर्यों की विशाल अट्टालिकाएँ साथ ही स्वच्छ व पक्के राजपथ एवं स्थान स्थान पर तिराहे चौराहे एवं उसके मध्य विशाल उपवन श्रावस्ती नगरी की महिमा द्विगुणित प्रगट कर रहे थे।

यातायात के प्रचुर साधन, पक्की सड़कें एवं राजकीय पूर्ण सुव्यवस्थाओं व चोर लुटेरों की निर्भयता के कारण दूर प्रान्तों के प्रसिद्ध व्यापारियों का व्यापारार्थ आवागमन निरन्तर होता रहता था। इससे श्रावस्ती नगरी की जनता जीवन–यापन के भरपूर सुख प्रदायक साधनों से सम्पन्न थी। इसके साथ ही ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' के सूत्र को साकार रूप देते हुए सुखद जीवन यापन कर रही थी।

उसी श्रावस्ती नगरी में धनदत्त–श्रेष्ठी निवास करता था। उसकी विशाल अट्टालिका पर फहराते ध्वज उसके इभ्य पति होने के परिचायक थे। साथ ही अनेक नगरों में प्रतिष्ठित व्यापारिक प्रतिष्ठान भी उसकी ऐश्वर्यता के प्रतीक थे। श्रावस्ती के राजा, राज प्रमुख एवं राज कर्मचारी से लेकर सारी जनता पर उनकी उदारता, सद्चरित्रता, व्यावहारिकता, सहृदयता की अमिट छाप जमी हुई थी।

धनदत्त श्रेष्ठि द्वारा प्रभु महावीर का दर्शन, समर्पण व नियंत्रण

धनदत्त श्रेष्ठी एक बार किसी कार्यवशात् राजगृही नगर गये थे। संयोगवशात् वहीं प्रभु महावीर का समवशरण लगा हुआ था, इसलिए राजगृही की जनता उमड़ –घुमड़कर बहने वाली बरसाती नदी के समान चारों दिशाओं विदिशाओं से प्रभु के समवशरण में पहुंच रही थी। उनके मुँह से प्रभु महावीर की महिमा श्रवण करके वह भी वहाँ पहुंचा। वहाँ प्रभु महावीर का देव निर्मित समवशरण, जिसके बीच में सुशोभित स्फटिक सिंहासन था, उस पर तने त्रयछत्र और उसके पास ढुलते हुए दो चंवर, विशाल अशोक वृक्ष, भामण्डल के साथ देव दुंदुंभि आदि अष्ट प्रतिहार्यों से युक्त बारह प्रकार की परिषद् के मध्य विराजे देखा। उनके चरणों में देव–देवेन्द्र, नर नरेंद्र सभी झुककर नमन कर रहे थे। यह सब देखकर धनदत्त हतप्रभ हो गया। साथ ही उनकी पाप प्रक्षालिनी धर्म देशना दिव्य ध्वनि द्वारा एक योजन तक विस्तीर्ण होकर विभिन्न भाषा भाषी श्रोताओं को मंत्र मुग्ध करती हुई धर्म के नाम पर उनके मन में बसे भ्रम का निवारण कर रही थी, जिसको श्रवण करके वह धन्य धन्य हो गया।

उसके पश्चात् वह चरणों में नमन करते हुए बोला–हे भगवन्! आपके

द्वारा प्रतिपादित धर्म के प्रति मैं अपने सच्चे हृदय से श्रद्धा प्रतीति और रुचि रखता हुआ उसको धारण करता हूँ। आप मुझे सम्यक्त्व सहित पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप गृहस्थ धर्म की दीक्षा प्रदान कीजिए।

तब प्रभु ने ''अहासुहं देवाणुप्पिया, मा पडिबंधं करेह'' – कहकर उसे श्रमणोपासक रूप दीक्षा प्रदान की। उसके पश्चात् धनदत्त ने बड़े विनम्र भावों में अर्ज की – भगवन्! यदि आप के पवित्र पावन चरणकमल श्रावस्ती नगरी में पड़ जायें तो अनेक भव्यात्माएँ प्रतिबोधित हो सकती हैं। इसलिए मेरा नम्र निवेदन है कि आप यथाशीघ्र श्रावस्ती नगरी को जरूर अपनी चरण–रज से पवित्र करें। प्रभु ने उसके अत्याग्रह व अपने दिव्य ज्ञानलोक में महान लाभ देखकर श्रावस्ती नगरी पधारने की स्वीकृति प्रदान कर दी। यह श्रवण करते ही धनदत्त श्रेष्ठि को ऐसी अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति होने लगी जैसे किसी रंक को राज्योपलब्धि हुई हो। वह तत्क्षण प्रभु को वन्दन करके वहाँ से यथाशीघ्र श्रावस्ती की ओर रवाना हुआ और रास्ते भर में चिन्तन करने लगा कि इस संसार में जिनधर्म ही सार है। इसकी प्रभावना हेतु तन, मन, धन सब कुछ चाहे समर्पित करना पड़े मुझे यत्किंचित् भी विचार न करते हुए किस प्रकार अधिक से अधिक जन समूह लाभ उठा सके, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। ऐसी मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञा धारण करके रास्ता पार करते हुए श्रावस्ती पहुंचा। बड़े हर्षोल्लास के साथ उसने प्रभु महावीर के श्रावस्ती में शुभागमन का पावन सन्देश श्रावस्ती नगरी के हर मोहल्लों में पहुंचा दिया। साथ ही अपने सगे सम्बन्धियों, इष्ट–मित्रों के यहाँ स्वयं पहुंचकर यह पावन सन्देश बताकर अपने घर पर पधारने का निमंत्रण देकर घर पहुंचा। कुछ समय पश्चात् सगे–सम्बन्धी, इष्ट–मित्र इस पावन सन्देश को पाकर साथ ही धनदत्त श्रेष्ठी के मुखारविन्द से प्रभु महावीर की महिमा श्रवण करके हर्ष विभोर होते हुए समूह के समूह धनदत्त श्रेष्ठी के घर पहुँचने लगे। धनदत्त श्रेष्ठी अपनी हवेली में आने वाले इष्ट–मित्रों, सगे–सम्बन्धियों का यथोचित सत्कार, सन्मान करते हुए यथोचित आसनों पर बैठाकर बोला–हे इष्ट–मित्रों! सगे–सम्बन्धियों! भवों–भवों के पुण्योदय से सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु महावीर का शुभागमन अपनी इस श्रावस्ती नगरी में होने वाला है। इसलिए श्रावस्ती का हर जन साधारण उनके दर्शन, वंदन व धर्म देशना का लाभ उठा सके ऐसी व्यवस्था करना है। इसमें आप सब का सहयोग परम आवश्यक है। धनदत्त श्रेष्ठि की इस बात को श्रवण करके उसके इष्ट–मित्र व सगे–सम्बन्धी परमानन्द की अनुभूति करते हुए उस योजना को सफल बनाने में जुट गये।

अपने सारे अन्य व्यापारादि कार्यों को गौण कर दिया। धनदत्त श्रेष्ठी के संसर्ग से उनके हृदय में भी यह आस्था दृढ़तम होने लगी कि ऐसे महान् पुण्योदय से प्राप्त लाभ को खोना अज्ञानता का ही परिचायक होगा।

द्वितीय परिच्छेद

श्रावस्ती में विरोधी तूफान

कहावत है – ''श्रेयांसि बहु विघ्नानि'' – इस लोकोक्ति के अनुसार धनदत्त श्रेष्ठि व उसके इष्ट–मित्र व सगे–सम्बन्धी रात–दिन एक कर तैयारी में जुटे हुए थे। लेकिन ज्यों ही यह संवाद श्रावस्ती में निवास करने वाले बहुसंख्य यज्ञादि हिंसक प्रवृत्तियों को ही धर्म मानने वाले ब्राह्मण समाज को प्राप्त हुए तो उनमें भारी खलबली मच गई। वे अपने प्रमुख सामन्त भद्र नाम के श्रेष्ठि जो हर तरह से सम्पन्न था। साथ ही उदार वृत्ति से अनेक का आश्रयदाता एवं वैदिक क्रिया कलाप का धुरन्धर विद्वान् एवं श्रद्धावान था और ब्राह्मण पंडितों के लिए तो पूर्ण आधारभूत ही था, जिसने अनेक यज्ञ भी कराये थे। इसलिए सारे ब्राह्मण समाज पर उसका इतना गहरा प्रभाव था कि जिस पर उसकी कृपादृष्टि विपरीत रूप ले ले तो फिर किसकी मजाल थी कि कोई उसको मुंह लगा सकता। वे सब पंडित उनके यहाँ एकत्रित हुए। तब श्रेष्ठी सामन्त भद्र ने सबको यथोचित आदर सत्कार देकर संबोधित करते हुए कहा–प्रिय वेदमार्गी अनुयायियों! जैसा कि आप सबने सुना ही है कि हमारी इस श्रावस्ती नगरी में महावीर स्वामी का आगमन होने वाला है। जो वेद विरोधी धर्म एवं उसके क्रिया कलापों का प्रचार करेंगे। जैसा कि हमने सुना है कि उनके उपदेश से प्रभावित होकर राजगृही में भी अनेक वेदानुयायियों ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया है और अब यहाँ भी यही स्थिति उत्पन्न होने वाली हैं। इसलिए वेदमार्ग के रक्षण हेतु क्या करना चाहिए। इसके बारे में आप सबके विचार जानना चाहता हूँ?

वेद मार्ग प्रमुख सामन्त श्रेष्ठी के इस उद्‌बोधन को श्रवण करके वहाँ उपस्थित वेदानुयायियों एवं विद्वानों ने आग में घी की आहुति देने के समान बड़े जोश व रोष में भाषण देकर सब में ऐसी उत्तेजना भर दी जिससे सब व्यक्तियों ने उस समय मिलकर यह दृढ़तम प्रतिज्ञा धारण की कि वेद विरोधी महावीर के श्रावस्ती में आगमन होने पर उनके स्वागत समारोह में कोई भी भाग नहीं लेंगे सो नहीं लेंगे, महावीर का नाम व उनके शब्द भी कानों से श्रवण नहीं करेंगे और यदि कोई अपने सगे–सम्बन्धी भी हों तो उनको भी यही प्रतिज्ञा कराकर रोकेंगे।

इतने पर भी यदि कोई इस सामाजिक नियम को तोड़कर महावीर के पास चला जावे तो उसे ब्राह्मण समाज से बाहर करके उनके साथ किसी प्रकार का व्यवहार नहीं रखना। यह श्रवण करके वहाँ उपस्थित विशाल जनसमूह ने तो यह दृढ़तम प्रतिज्ञा धारण की ही साथ में यह सन्देश जन–जन तक पहुंचाने का भी अनेक व्यक्तियों ने बीड़ा उठा लिया। जब यह बात श्रेष्ठि धनदत्त को मालूम पड़ी तब पहले तो उसने इस बात को सामान्य रूप से ही लेकर आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा लेकिन जब उन्होंने देखा कि इसका धुआंधार प्रचार होने लगा है, जिससे अनेक श्रावस्ती के प्रतिष्ठित व्यक्ति व विद्वान् भी सामन्त भद्र के पक्ष में मिलते जा रहे हैं, तब उसके अन्तर्हृदय में कुछ चिन्ता घर करने लगी। स्वपक्ष की संख्या नगण्य होती जा रही थी और विरोधी पक्ष प्रबल होते हुए दिन–प्रतिदिन उग्र रूप धारण करता जा रहा था।

यह देखकर धनदत्त श्रेष्ठी का अन्तर्मन व्यथित होने लगा। वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या किया जाय? ऐसे प्रबल विरोधमय वातावरण में प्रभु का यहाँ पधारना कितना उचित रहेगा? ये लोग तो प्रभु के आगमन की बात सुनकर ही इतने उद्विग्न हो रहे हैं, तो पधार जाने पर न मालूम किस प्रकार का अभद्र व्यवहार करने हेतु तत्पर हो जाय। उस समय मैं प्रभु का इनसे कैसे बचाव कर सकूंगा? इसलिए श्रेयस्कर यही होगा कि भगवान को यहाँ की सारी स्थिति अवगत कराते हुए क्षमायाचना करके यहाँ पर पधारना स्थगित रखें – ऐसा निवेदन प्रभु चरणों में करवा दूँ।
धनदत्त ने भगवान को निवेदन करवाया कि आप इस समय श्रावस्ती नगरी की ओर विहार नहीं करें।

प्रभु महावीर का श्रावस्ती की ओर विहार

प्रभु ने उसके भाव पहले ही जान लिये थे। लेकिन प्रभु ने उसी समय अपने ज्ञानालोक में सारी स्थिति का चिन्तन करके पहले से ही श्रावस्ती की तरफ विहार की तैयारी कर दी थी। प्रभु ने उस दिशा में विहार कर दिया कि एक दिन निश्चत रूप से यही श्रावस्ती धर्म तीर्थ की प्रभावना की मुख्य अध्यात्मस्थली बनेगी।

तृतीय परिच्छेद

धनदत्त श्रेष्ठि का अन्तर्मन भयग्रस्त

इधर श्रेष्ठी धनदत्त को प्रभु के विहार के शुभ समाचार मिले तो एकबारगी तो वह हतप्रभ हो गया, साथ ही उसका अन्तर्मन मयूर भी नाच उठा लेकिन आखिर छद्मस्थ था, जिसके प्रभाव से प्रभु के अतिशय प्रभाव पर अटूट

आस्था रखते हुए भी तात्कालीन ब्राह्मणों के उपद्रवमय वातावरण को देखकर उसका मन अंदर ही अंदर भयभीत हो रहा था। उसी समय उसका अन्तरमन उसे जागृत करता हुआ बोल उठा कि धनदत्त! तू अपने आप में व्यथित मत हो और प्रभु के दिव्य ज्ञानालोक पर दृढ़ आस्था रख। वे अपने ज्ञान में श्रावस्ती का भविष्य उज्ज्वल देखकर ही इधर पधार रहे हैं। उनके अतिशय का प्रभाव ऐसा है कि जैसे सिंह की एक दहाड़ सुनते ही सारे वनचर प्राणी शान्त एवं नम्र हो जाते हैं, वैसे ही प्रभु के इस श्रावस्ती की सीमा में चरण पड़ते ही ये उपद्रवी सारे अपने आप चरण शरण को स्वीकार कर लेंगे या फिर दुम दबाकर भाग जायेंगे। इस अन्तर्मन की आवाज को श्रवण करके धनदत्त के मन में पुनः एक नवीन चेतना का संचार हुआ और जुट गया प्रभु के आगमन की तैयारी में।

प्रभु महावीर का जीर्ण आम्र उपवन में पदार्पण

प्रभु महावीर अपने विशाल शिष्य सम्पदा के साथ राजगृही से श्रावस्ती नगरी के बीच का मार्ग पार करते हुए बहुत निकट पहुंच चुके थे। श्रेष्ठी धनदत्त ने अपने इष्ट–मित्रों व सगे–सम्बन्धियों को सचेत कर दिया कि संभवतः कल प्रभु का श्रावस्ती में आगमन हो सकता है और आज एक गाउ (कोस) की दूरी पर जो पुराना जीर्ण आम्रोपवन है उसमें निवास करेंगे। इसलिए आप सब लोगों को चारों तरफ के विरोधी वातावरण पर दृष्टि रखते हुए प्रभु के स्वागत में अधिक से अधिक जन समूह पहुंच सके और दर्शन वंदन का महान पुण्योपार्जन कर सके ऐसी व्यवस्था करना है।

श्रेष्ठी धनदत्त के उक्त अभिप्रायों को सुन व जानकर सब निकल पड़े प्रभु की आगवानी हेतु। चारों तरफ प्रभु के आगमन से हर्ष लहराने लगी। श्रद्धालुजन पूर्ण श्रद्धा भाव के साथ स्वागत हेतु उमड़ रहे थे।

विरोधियों के मन में भारी विषाद

दूसरी तरफ सामन्त भद्र यह दृश्य देखकर भारी चिंता से ग्रसित होता हुआ सोच रहा था कि जैसे सूर्योदय से पूर्व लालिमा के प्रगट होते ही अन्धकार विलुप्त हो जाता है, उसी प्रकार भगवान महावीर के आगमन के पूर्व ही उनके प्रति जनमानस में ऐसा अद्वितीय श्रद्धा का आलोक प्रसारित हो रहा है तो उनके आगमन पर क्या होगा। कहीं यह नहीं हो जाय कि उनके उपदेश को श्रवण करके जन समूह सनातन वैदिक धर्म से विमुख हो जाय। उनको अपने मत का भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होने लगा। वे इसके बारे में चिन्ता मग्न होकर बैठे ही थे कि उसी समय वेदानुयायियों का समूह पर समूह उनके निवास के प्रांगण

में प्रवेश करने लगा और सब परस्पर बड़े रोष और जोश में आकर अपनी–अपनी भावना प्रगट करते हुए वैदिक धर्म की रक्षा का जनमानस में उद्वेग पैदा करने लगे।

सामन्तभद्र के अन्तर्मन की आवाज

उन्हीं उद्वेग भावों से अनुरंजित सामंतभद्र के अन्तर्भावों ने करवट बदली और उसकी आवाज उसे झकझोरते हुए आह्वान करने लगी कि हे सामन्तभद्र जोश व रोष में होश मत खो। चिन्तन कर कि जिस महापुरुष महावीर ने अपने राज वैभव का परित्याग कर बारह वर्ष तक उग्र तप करके कितने कष्ट उठाये, वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी अवस्था को प्राप्त करके जगत् के प्राणियों के दुःख निवारणार्थ एवं शाश्वत सुख की प्राप्ति कराने रूप पूर्ण अहिंसक साधना का मार्ग निरूपण करने हेतु यहाँ पधार रहे हैं।

यदि मताग्रह के वशीभूत होकर तू उसमें बाधक बनेगा तो तेरे जैसा भाग्यहीन और कौन होगा? इसलिए यदि सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हो तो तू इस अहिंसक अभियान में सहयोगी बनकर देख तेरा यह भव पर भव कैसा सुखमय बन जायेगा। इसी अन्तर् आवाज को सुनते हुए सामंतभद्र सब लोगों के चले जाने पर अपने कक्ष में अकेला बैठा गहन चिंतन कर रहा था।

सामन्तभद्र के सत्याग्रह में दुराग्रह का व्यवधान

उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण ने उनके उस कक्ष में प्रवेश किया और तीव्र क्रोधावेश में चिल्लाता हुआ कहने लगा–श्रेष्ठी सामन्तभद्र सारे ब्राह्मण समाज ने आपको प्रमुख पद का सम्मान दिया और आपके यहाँ ही इकट्ठे होकर सारे समाज ने यह निर्णय लिया कि महावीर के आगमन पर उनके किसी कार्यक्रम में कोई भाग नहीं लेगा और यदि गुप्तरूप से भी कोई लेगा तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जायेगा। लेकिन आज हम सुन रहे हैं कि आपका परिवार ही समाजद्रोही बनकर उसका सत्यानाश करने हेतु उतारू है। क्या आपको मालूम नहीं हैं कि आपके जो तीन पुत्र हैं– रत्न भद्र, सुभद्र और सबसे छोटा आपको प्राणों से भी प्यारा पुत्र मणि भद्र वह कल धनदत्त श्रेष्ठि के साथ आम्रोपवन में गया और श्रावस्ती की प्रजा के प्रतिनिधित्व को वहन करते हुए महावीर को श्रावस्ती नगरी में पधारने का आग्रह भरा निमंत्रण देकर आया है। ऐसे प्रमाणिक समाचार हमें प्राप्त हुए हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

मणिभद्र को कैद

ज्यों ही यह बात सामन्तभद्र ने सुनी, वह एकदम दिङ्मूढ़ बनकर धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा। यह देखकर सब हतप्रभ हो गये और तत्क्षण दोनों पुत्र रत्नभद्र और सुभद्र भी हड़बड़ाते हुए वहाँ पहुंच गये। वे वहाँ से उठाकर उनके शयनकक्ष में लेकर गये और कुछ उपचार करने लगे, जिससे उन्हें पुनः कुछ होश आया और उसी समय वे जोर–जोर से चिल्लाते हुए कहने लगा–पुत्रों! मैं यह क्या श्रवण कर रहा हूँ। जिस वैदिक धर्म का पीढ़ी और पीढ़ी हमारा खानदान कट्टर आस्थावान गिना जाता है, साथ ही सारा ब्राह्मण समाज अपने पूर्वजों से लेकर आज तक समाज के मुखिया के रूप में सम्मान देता आ रहा है, सारे धार्मिक व सामाजिक कार्यों में हमारी सलाह ही प्रमुख मानी जाती है और सब पूर्ण आदर भाव से उन सारी सलाहों को शिरोधार्य करते हैं। यही नहीं आज भी मेरे स्वयं के नेतृत्व में ही वैदिक धर्म के रक्षणार्थ सभाएँ हुईं जिसका यह निर्णय हुआ कि कोई वैदिक धर्मानुयायी महावीर के आगमन पर स्वागतोत्सव से लगाकर अन्य किसी कार्यक्रम में भाग नहीं लेगा। यदि कोई गुप्त रूप से भी चला गया तो वह बात बाहर प्रगट होते ही उसे वैदिक समाज से निष्कासित कर दिया जायेगा। आज मुझे बड़ा खेद हो रहा है कि मणिभद्र ही अपने कुल व धर्म की प्रतिष्ठा को दांव पर लगाकर धनदत्त के वाक्जाल में फंसकर वैदिक धर्म के विध्वंसक महावीर को मुझे बिना बताये ही श्रावस्ती आने का निमंत्रण देकर आ गया और वह बात बाहर भी प्रगट हो गई। उसने तो मुझे समाज में मुंह दिखाने लायक ही नहीं रखा। मैंने तो मेरी अन्तर्मन की आवाज की भी उपेक्षा करके सारे समाज में वैदिक धर्म के रक्षणार्थ शंखनाद गुंजाया और सबको संगठित करके महावीर के विरुद्ध मोर्चा खड़ा किया। लेकिन आज तो मैं सारे समाज के सामने विश्वासघातक एवं तिरस्कार का पात्र ही कहलाऊंगा। हाय! यह बात सुनने के पहले ही मुझे मृत्यु ने वरण कर लिया होता तो मैं कितना धन्य हो जाता। अब इस कलंकित जीवन को जीना मेरे लिए भयंकर दुःखप्रद महसूस हो रहा है। ऐसा कहते हुए वे पुनः खेदित होने लगे।

अपने पिता सामन्त भद्र को इस प्रकार खेदित होते देखकर दोनों पुत्रों को भी भारी रोष उत्पन्न हो गया। वे तत्क्षण पिताश्री को आश्वस्त करके घर के भीतर गये। घर के सभी स्त्री–पुरुषों को यह बात ज्ञात हुई तो वे भी सब मणिभद्र पर गालियों की बौछार करने लगे। कई सदस्य तो क्रोधावेश में

आकुल व्याकुल होते हुए धक्का देकर घर से बाहर निकालने की चेष्टा भी करने लगे। लेकिन उन दोनों भाईयों ने मणिभद्र को पकड़कर विशाल हवेली के अंत में बने एक कमरे में बंद करके आदेश दे दिया कि खबरदार यदि इस कमरे के बाहर निकलने की भी हिम्मत की। तेरे जैसे कुलांगार के कारण सारे समाज में अपने गौरवशाली कुल की यश प्रतिष्ठा को धब्बा लगा है। तुझे बिना किसी परिवार की आज्ञा उस धनदत्त के वाक्जाल में फंसकर वैदिक धर्म के विध्वंसक महावीर के पास जाकर श्रावस्ती में आने का निमंत्रण देने की क्या आवश्यकता थी? ले चख अब इस दुष्कृत्य का फल–इस कैद कोठरी में पड़ा पड़ा। ऐसा कहते हुए उसे उस कोठरी में बन्द करके बाहर से ताला लगाकर वहाँ से पिताश्री के चरणों में पहुंचे और सारी बात बताकर उनको धैर्य देते हुए कहने लगे।

सामंतभद्र द्वारा ब्राह्मण समाज से क्षमा याचना

पिताश्री अब चलिये हमारे साथ ताकि हम हमारे समाज व प्रमुख पंडितों के पास जाकर उन्हें विनम्रता पूर्वक सारी बात बताकर इस नादान बच्चे द्वारा किये गये अनुचित कार्य की क्षमायाचना करके आ जायें। दोनों पुत्रों की यह बात सुनकर सामन्तभद्र को कुछ धैर्यता बंधी और वह उन दोनों पुत्रों के साथ घर से निकला और एक सामान्य से सामान्य ब्राह्मण के घर जाकर गिड़गिड़ाता हुआ कहने लगा कि हे ब्राह्मण देवता! मेरे पुत्र द्वारा हुए इस जघन्य अपराध हेतु मुझे क्षमा प्रदान कर दीजिए। मैंने इस अपराध हेतु मणिभद्र को एक कमरे में बन्द कर दिया है फिर भी इस अपराध के प्रायश्चित्त हेतु जो भी आप दण्ड व्यवस्था करेंगे, वह मैं स्वीकार करूंगा। उन ब्राह्मणों ने सामंत भद्र को इस प्रकार विनीत भाव से गिड़गिड़ाते हुए अपने पुत्र के अपराध की क्षमायाचना करते देखा तो उनका भी हृदय पसीज गया और सभी ने उसे क्षमा प्रदान कर दी, जिससे सामंतभद्र अन्तर्शान्ति का अनुभव करता हुआ चलकर राजी हो जाने पर अपने घर आया और निज शय्या पर सो गया।

पंचम – परिच्छेद

मणिभद्र को प्रभु महावीर के दर्शन का निमित व श्रावस्ती का निमंत्रण

मणिभद्र श्रेष्ठि सामंतभद्र का सबसे कनिष्ठ पुत्र था। वह माता–पिता दोनों का अत्यन्त प्रिय था। उसमें भी मातृ स्नेह से तो वह इतना प्रभावित था कि थोड़े समय के लिए भी माता की गोद से दूर रहना उसे असह्य हो उठता

था। हालांकि अब वह बीस वर्ष का युवक भी हो गया, तो भी माता के बगैर उसे चैन नहीं पड़ता था। खाना भी माँ के साथ ही खाता और हमेशा मां के पास ही रहता। अकस्मात् एक दिन उस स्नेहमयी माता की मृत्यु हो जाने से उसका मन उद्विग्न रहने लगा, जिसके कारण न तो उसे खाने की रुचि होती, न किसी से बोलने की। हर समय चुपचाप गुमशुम होकर एक तरफ बैठा रहता। एक दिन घर में बैठे–बैठे उसका मन इतना उचट गया कि घर की हवेली से बाहर निकलकर जिधर पांव मुड़े उसी दिशा में आगे बढ़ता चला गया और चलते चलते उसी आम्र उपवन में पहुंच गया जहाँ एक विशाल आम्रवृक्ष की छाया तले प्रभु महावीर विराज रहे थे, जिनके चरणों में गणधर गौतमादि अनेक शिष्य उपासना करते हुए अपनी अनेक शंकाओं का समाधान कर रहे थे।

उससे कुछ दूर ही श्रेष्ठि धनदत्त भी उपासना करने बैठे थे। उन्हीं के पास वह भी जाकर बैठ गया और श्रवण करने लगा प्रभु की अमृतोपम देशना को जिसे सुनते–सुनते उसके अन्तर्मन में एक अपूर्व शान्त रस की धारा प्रवाहित होने लगी और उसका निरन्तर अनुपान करने की तीव्र उत्कण्ठा के वशीभूत होकर प्रभु चरणों में प्रार्थना की कि प्रभो! आप यथाशीघ्र श्रावस्ती पधारने की कृपा करें ताकि आप की अमृतोपम देशना का अनुपान करने का इस सेवक को अवसर प्राप्त हो। ऐसा नम्र निवेदन करके पुनः अपने घर की ओर लौट पड़ा। उस समय तक प्रभु महावीर के विरोध में श्रावस्ती में निर्मित वातावरण व पिताश्री की अध्यक्षता में लिये गये निर्णय आदि से मणिभद्र पूर्ण रूप से अनभिज्ञ था। उसे ज्ञान तो तब हुआ जब उसके भाईयों ने यह कहते हुए उसे हवेली के अन्तिम कमरे में बंद करते हुए कहा कि अब यहाँ पड़ा–पड़ा भोग अपने अपराध का दण्ड। जो अपराध वेद विध्वंसक महावीर के पास धनदत्त श्रेष्ठि के साथ जाकर उनको श्रावस्ती नगरी में पधारने का कल निमंत्रण देकर आया।

अपने दोनों भाईयों की बात सुनकर वह चिन्तन करने लगा कि प्रभु महावीर के दर्शन वंदन देशनाश्रवण और श्रावस्ती पधारने हेतु निमंत्रण आदि कार्य करके मैंने ऐसा कौन सा महान अपराध किया, जिसके कारण मुझे इस कमरे में एक कैदी की तरह बंद कर दिया गया है। इस बात पर गहन चिन्तन करते सारी रात्रि व्यतीत हो गई। प्रभाती छटा छाने लगी, जिसको देखकर वह पुनः चिंतन करने लगा कि आज प्रभु महावीर का शुभागमन श्रावस्ती में होने वाला है और मैं इस कैद कोठरी में बंद पड़ा हूँ। भूख–प्यास भी उसे सता रही

थी। उससे वह जितना खेदित नहीं हो रहा था, उतना वह प्रभु दर्शन में बाधक इस विघ्न से छटपटाने लगा।

मणिभद्र की कैद से मुक्ति

उसे बार बार प्रभु दर्शन की तीव्र प्यास सताने लगी। वह सोचने लगा– मेरे जैसा भाग्यहीन कौन होगा? किन अशुभ कर्मों के उदय से प्रभु की चरणोपासना में मेरे यह विघ्न उत्पन्न हुआ। ऐसा चिन्तन करते–करते उसके नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। इतने में उसके कर्ण–कुहरों पर कमरे के द्वार की आहट पड़ी। वह सजग होकर उधर टकटकी लगाकर देखने लगा। इतने में द्वार खुला और उसके सामने एक युवती खड़ी दिखाई दी जो मणिभद्र के पास आकर उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में ग्रहण करके कहने लगी–मणिभद्र! इस समय न तो एक दूसरे का परिचय जानने का समय है, न इसकी आवश्यकता है। तुम्हारे मन में प्रभु महावीर के पावन दर्शन की तीव्र प्यास जगी है। उसको शमन करने हेतु जितनी शीघ्रता कर सको उतनी शीघ्रता से निकल जाओ यहाँ से। तुम्हारे पिताश्री की मति भ्रमित हो रही है। इसी कारण उन्होंने प्रभु महावीर के श्रावस्ती में पधारने पर विरोधी वातावरण निर्मित किया है। लेकिन उससे प्रभु के अतिशय प्रभाव पर कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है।

उनके दिव्य ज्ञानलोक से सारी श्रावस्ती जगमगाने वाली है। तुम मेरी बात मानकर अविलम्ब पास के कमरे से होकर बगीचे में उतर जाओ और पूर्व दिशा के दरवाजे को इस चाबी से खोलकर निकल जाओ। ऐसा कहकर वह युवती मणिभद्र का हाथ पकड़कर उस कमरे में लेकर आई और बगीचे में उतरकर जाने का रास्ता बताने लगी। यह देखकर मणिभद्र एक बार तो रोमांचित होकर उसका परिचय पाने हेतु तत्पर होने लगा, लेकिन उसी समय उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो पड़े और कहने लगा–हे रमणी रत्न! आपका और मेरा कोई नजदीक का परिचय हुआ है, ऐसा भी मेरी स्मृति में नहीं आ रहा है फिर भी इस समय जो मेरे पर तुमने महान् उपकार किया है, उससे मुझे ऐसी अनुभूति हो रही है कि तुम इस मानव तन में भी कोई दिव्य शक्ति बनकर मेरे इस महान लाभ में सहयोगी बनी हो जिसका मैं महान् आभार मानता हूँ।

मणिभद्र की यह बात श्रवण करके उसको आश्वस्त करते हुए बोली – मणिभद्र अब तुम यथाशीघ्र यहाँ से निकल जाओ और प्रभु महावीर के दर्शन वन्दन का लाभ उठाकर अपने जीवन को धन्य बनाओ। वे महाप्रभु

निश्चित रूप से तुम्हारा कल्याण करेंगे। ऐसा कहकर वह आगे आगे चलकर उस कमरे के बाहर लगी निसरणी से उतरी और मणिभद्र को भी उतारा। फिर स्वयं ही उस चाबी से ताला खोला और दरवाजे को खोलकर उससे बाहर निकलने का संकेत किया। मणिभद्र यथाशीघ्र दरवाजे से बाहर निकला और फिर पीछे मुड़कर उसके दिव्य मुख मंडल को निहारता हुआ बोला–हे देवी तुम्हारे इस महान् उपकार का बदला कैसे चुकाऊँगा। मैंने तुम्हारा अभी तक तो कुछ परिचय भी नहीं पाया है। तब उसने भी आँखें ऊपर उठाकर मणिभद्र के रूप को निहारते हुए कहा–अभी इसके लिए इतना विलम्ब करना खतरे से खाली नहीं है। यदि आपकी अन्तर्भावना होगी तो अपना निश्चित रूप से मिलन होना संभावित है। ऐसा कहकर वह यथाशीघ्र पुनः द्वार बंद करके अपने स्थान पर उस निसरणी को वहाँ से हटाकर पहुंच गई और मणिभद्र आगे बढ़ गया।

षष्ठम परिच्छेद

मणिभद्र की मुक्ति दाता समस्या के घेरे में

इधर वह रमणी जिसका नाम रत्नमाला था मणिभद्र को विदा करके अपने शयन कक्ष में पहुंची। इतने में एक महिला ने पीछे से आकर उसके कंधों को ज्यों ही छुआ रत्नमाला हक्की–बक्की सी रह गई और बोली – कौन हैं बहिन आप और इस समय आपका मेरे कक्ष में आने का क्या प्रयोजन? यह श्रवण करके बोली–बहिन! घबराओ मत। मैं तो सिर्फ तुम्हारे साहस एवं धैर्यतापूर्वक किये जाने वाले इस पुण्यकार्य के अनुमोदनार्थ धन्यवाद अर्पित करने आई हूँ कि आपने मणिभद्र को उनके पिताश्री और भाईयों के मतान्धता के चक्रव्यूह में फंसकर प्रभु महावीर के विरोध में मोर्चा खड़ा करके एक कैद कोठरी में एक अपराधी की तरह बिना कुछ सत्यता को पहचाने कैद कर दिया, उसको तुमने उस कैद से मुक्त कर दिया। ऐसा पुनीत व भयंकर विपत्ति पैदा करने वाला कार्य जो महान् आत्मबली व धैर्यवान हो वही कर सकती है। यह सामान्य नारी के बलबूते की बात नहीं हो सकती। बहन रत्नमाला लगता है तुम सचमुच इस नारी तन में कोई महाशक्ति हो। इसके सिवा ऐसा कार्य करना तो दूर इसका चिन्तन भी नहीं कर सकती। हालांकि मैंने सारी बात आंखों से देखी है फिर भी तू मेरी तरफ से किंचित् मात्र भी मत घबराना। हालांकि मैं चाहती तो तुझे उसी समय टोक सकती थी, फिर भी मैंने तुझे नहीं टोका। उसमें भी बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। वह सारा रहस्य अभी प्रगट करने का अवसर नहीं है। समय आने पर स्वयं ही प्रगट हो

जायेगा।

मैं तुझे इतनी ही बात बता देती हूँ कि अब भोर हो गई है, इसलिए अपन दोनों का अभी यहाँ पर खड़े रहकर बात करने का भी अवसर नहीं है। यदि किसी ने हमारी बात सुन ली तो अपन दोनों का बुरा हाल हो सकता है। बहिन इसलिए अब मैं चलती हूँ। जाते जाते पुनः तुझे सावधानी दिला देती हूँ कि तू पूर्ण सावधानी रखना। घुणाक्षर न्याय के रूप में भी किसी को कुछ मालूम नहीं पड़े, इसलिए श्रेष्ठ यही होगा कि प्रातःकाल होते ही तुम यहाँ से कहीं अन्यत्र चली जाना अपने किसी निकट सम्बन्धी के यहाँ।

रत्नमाला उस स्त्री की सारी बात को श्रवण करके मन ही मन में गहन चिन्तन करने लगी–कि आखिर यह नारी है कौन? जिसने मेरी सारी गुप्त कार्यवाही जान ली। हालांकि यह इस मेरे द्वारा किये हुए कार्य की अनुमोदना करते हुए पूर्णतः धैर्यता भी बंधा रही है। आखिर है क्या इसमें छिपा रहस्य?

रहस्य जानने हेतु रत्नमाला एकदम नम्र बनकर उनके चरणों में नमस्कार करके आंखों द्वारा अश्रु प्रवाहित करते हुए कहने लगी–बहिन! आपके द्वारा इस विकट वातावरण में सम्बल प्राप्त करके मैं आपके प्रति भारी कृतज्ञता भाव की अभिव्यक्ति करते हुए आपका परिचय जानना चाहती हूँ।

रत्नमाला की यह बात सुनकर उस स्त्री ने कहा–बहिन! मैं अन्य कोई नहीं। जिस मणिभद्र जी को आपने कैद से मुक्त किया उन्हीं की मझली भाभी मणिमालिनी हूँ। बस इतना कहते ही उसे समझते देर नहीं लगी कि यह सामंतभद्र के मझले पुत्र सुभद्रजी की पत्नी हैं। जिनको मैं दो दिन से देख रही हूँ कि वे मेरे प्रति जब से मैं आई हूँ तब से ही कितनी आत्मीयता प्रगट कर रही हैं जैसे मैं इस परिवार की सदस्या ही हूँ। हालांकि इस परिवार से हमारे परिवार का कोई जाति से सम्बन्ध भी नहीं है। सिर्फ पिताश्री के व्यापारिक सम्बन्ध के कारण वे मुझे यहाँ कुछ समय के लिए रखकर आवश्यक कार्य हेतु अन्यत्र गये हुए हैं। ऐसा चिन्तन करके रत्नमाला मन में पूर्ण आश्वस्त होकर यथाशीघ्र मणिमालिनी का आभार व्यक्त करती हुई अपने कक्ष में चली गई और मणिमालिनी भी पुनः अपने कक्ष में चली गई।

सप्तम परिच्छेद

प्रभु महावीर का श्रावस्ती प्रवेश

प्रभु महावीर श्रावस्ती से एक योजन दूर जीर्ण आम्र उपवन में विराजमान थे। दूसरे दिन सूर्योदय के बाद विहार करके गजगति से चलते हुए ज्यों ही श्रावस्ती नगरी के नजदीक पधारे वहाँ के श्रद्धालु भक्त समूह के समूह उनकी अगवानी हेतु सामने पहुंच गये। पूर्ण भक्ति भाव से दर्शन करके उनके चरणों में वन्दन करते हुए अपने जीवन को धन्य–धन्य मान रहे थे। आज प्रभु दर्शन करते हुए जो आनंदानुभूति हो रही थी उसके सामने त्रिलोक की राज्य ऋद्धि भी तुच्छ प्रतीत हो रही थी।

देव–देवेन्द्रों, नर–नरेंद्रों के साथ ही विशाल शिष्य–शिष्याओं के परिवार से परिवेष्टित प्रभु महावीर त्रिलोक पूज्य निरन्तर गति से विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी में प्रवेश करने लगे। उस समय का दृश्य अपूर्व व अलौकिक था। अष्ट प्रतिहार्य व चौतीस अतिशय युक्त प्रभु का विश्व मोहक मुख मण्डल से प्रस्फुटित मृदु मुस्कान एवं आभा मण्डल को देख स्वतः ही विरोधियों के मनोभावों में भी सहज श्रद्धा उत्पन्न होने लगी जिससे अनचाहे ही अपने आप उनका मस्तक भी झुकने लगा। चारों तरफ से देवेंद्रों, नर–नरेंद्रों द्वारा ''जय जय नन्दा, जय जय भद्दा'' की ध्वनियों से आकाश की दसो दिशाएँ गूंज रही थीं। श्रावस्ती का जन समुदाय उस समय अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति कर रहा था। जैसे सूर्योदय होते ही संसार के सभी प्राणियों में एक नया उत्साह पैदा होता है लेकिन उल्लू उस समय खेदित होकर एक तरफ छिपकर बैठ जाता है उसी प्रकार प्रभु के शुभागमन के समय सब नगर नागरिक आनंदानुभूति कर रहे थे लेकिन उल्लुक स्वभाव वाले कुछ व्यक्ति सामन्तभद्र एवं उनको साथ देने वाले उस समय भी उदासीन बने हुए भीतर ही भीतर क्षुब्ध बन रहे थे।

जब लोगों ने मणिभद्र को करबद्ध हुए प्रभु की उपासना करते हुए साथ चलते देखा तो सबके आश्चर्य का पार नहीं रहा। इधर सामंतभद्र व पारिवारिक सदस्यों को प्रातः उठते ही समाचार मिले कि मणिभद्र को कमरे में बन्द करके रखा गया लेकिन वह वहाँ से भग कर प्रभु महावीर के नगर प्रवेश महोत्सव में शामिल हो गया। यह सुनकर उसका सारा शरीर ही क्रोधाग्नि से प्रज्ज्वलित होने लग गया। वह जोर जोर से चिल्लाता हुआ कहने लगा कि मेरे घर में कौन ऐसा दुष्ट व्यक्ति है जिसने मणिभद्र को ताला खोलकर उसे कमरे से निकालने का दुःसाहस किया है। किस पापी, अधम,

विश्वासघाती ने ऐसा दुष्कर्म किया है। मैं येन केन प्रकारेण उस दुष्ट का पता लगाकर उसे उसका भयंकर दंड नहीं दूं तो मेरा नाम सामंतभद्र मत समझना।

उसने तत्क्षण परिवार के समग्र सदस्यों एवं नौकरों को एकत्रित करके खूब डांट फटकार लगाते हुए पता लगाने की कोशिश की लेकिन कुछ भी सुराग हाथ नहीं लगा तब सबको वहाँ से छुट्टी दे दी।

उसके बाद वे सब परस्पर धीरे–धीरे बात करने लगे कि यह तो किसी देव शक्ति का ही चमत्कार है कि बाहर ताले से बन्द उस कमरे से मणिभद्र को बाहर निकाल दिया गया अन्यथा सामान्य मनुष्य की तो ताकत ही क्या? इतने में एक वृद्धा बोली– भाई! यह बात तो तुम्हारी सत्य प्रतीत होती है। जब मैं बाहर खटिया पर सोई हुई थी उस समय रात्रि के बारह बजे आकाश मार्ग से एक योगिनी उतरी और मणिभद्र को कमरे से निकालकर ले जाते हुए मैंने देखी लेकिन उस दिव्य तेज के आगे मेरे मुंह से कोई आवाज ही नहीं निकल सकी। इतने में दूसरी एक महिला बोली–अरे मणिभद्र स्वयं कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। उसकी माँ के गुजर जाने के बाद तो वह हर समय एकान्त में बैठा बैठा यंत्र, तंत्र, मंत्र के माध्यम से देव आराधना में तन्मय बना रहता था। हो न हो, उसे कोई मंत्र सिद्ध हो गया है जिसके फलस्वरूप ऐसे कष्ट के समय में किसी देव ने उसकी सहायता की है।

तीसरा बोला कि मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह अपनी मंत्र शक्ति से उस कमरे में ही गुप्तरूप से बैठा है। ये परस्पर होने वाली सारी बातें सामंतभद्र के कानों तक भी पहुंची। लेकिन वह इन बातों को कोई महत्त्व नहीं देता हुआ इस निश्चय पर जरूर पहुंचा कि मणिभद्र को उस बन्द कमरे से बाहर निकालने में जरूर मेरे आत्मीय व्यक्ति का ही हाथ है क्योंकि इसके बिना इस विशाल हवेली के एकान्त बने कमरे को कौन जान सकता है? वहाँ तक पहुंच ही कौन सकता है? अब मैं उस व्यक्ति का पता लगाकर उसके इस दुष्कर्म का उसे दण्ड देकर जग जाहिर नहीं करूं तो मेरे जातीय प्रमुखता का क्या गौरव? सामंतभद्र इसी चिन्ता से चिन्तित हो रहा था। इतने में प्रभु महावीर स्वामी की जय जयकारों से नभ मंडल को गुंजायमान करने वाली तीव्र ध्वनि उसके कानों में पड़ी। जिसको श्रवण करके उसने राजमार्ग पर दृष्टि डाली जिस पर प्रभु महावीर देव देवेंद्रों, नर नरेंद्रों एवं साधु साध्वियों से परिवेष्टित होकर वंदना अर्चा के साथ गजगति से कदम बढ़ा रहे थे। साथ ही उसने देखा कि मणिभद्र भी उनकी उपासना करता हुआ करबद्ध होकर

साथ–साथ चल रहा है जिसको देखते ही तो मानों अग्नि में घी पड़ा हो।

सामन्तभद्र यह देखकर तो क्रोधाग्नि से मानो प्रज्ज्वलित होने लग गया। चारों तरफ परमानन्द की हर्ष लहर व्याप्त हो रही थी, लेकिन उसके घर में तो मानो परिवार के निकटतम सदस्य की मृत्यु हो गई जैसा विषाद छाया हुआ था। सब गुमशुम होकर एक दूसरे को निहार रहे थे। इतने में एक दासी के शब्द उसके कान में पड़े जो दूसरी दासी को संबोधित करते हुए कह रही थी कि सखी मुझे तो मणिभद्र को भगाने में हमारे यहाँ कुछ दिन मेहमान तरीके आकर रहने वाली उस चतुर चालाक रत्नमाला का ही हाथ लगता है। ज्यों ही ये शब्द रत्नमाला के कान में पड़े तो सावधान होकर गहन चिन्तन करके इस निर्णय पर पहुंची कि अब यहाँ रहना उचित नहीं है। वह जैसे–तैसे मणिमालिनी के पास पहुंची और उसके सामने सारी बात सत्य रूप से रख दी। मणिमालिनी ने उसे पूर्णरूप से आश्वस्त किया तब वह वहाँ से फिर अपने शयनकक्ष में चली गई और चिन्तन करने लगी कि अब क्या करना चाहिए? वह निर्णय लेने हेतु मणिमाला का अपने कक्ष में आगमन का इन्तजार करने लगी। लेकिन तत्कालीन परिस्थितिवश वह वहाँ नहीं पहुंच सकी।

अष्टम परिच्छेद

रत्नमाला का परिचय

रत्नमाला कौशाम्बी नगरी के श्रेष्ठि वसुभूति की इकलौती पुत्री थी। श्रेष्ठि वसुभूति समाज में लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्ति था। व्यापार के क्षेत्र में भी उसने अपनी खूब प्रतिष्ठा जमा रखी थी। विशाल हवेली एवं उसके नीचे ही बड़े बड़े गादी तकिये से सुसज्जित व्यापारिक प्रतिष्ठान उसकी सुख समृद्धि का द्योतक था। अपनी इकलौती लाड़ली रत्नमाला के जन्म से उसके घर की खुशी द्विगुणित हो रही थी। पति–पत्नी अपनी लाड़ली को निहार कर बड़ी सुखानुभूति करते थे। लेकिन वह सुख ज्यादा समय स्थिर नहीं रह सका और अकस्मात् थोड़ी सी बीमारी में ही पत्नी का देहावसान हो गया, जिसके कारण कुछ समय तक तो श्रेष्ठि वसुभूति का अन्तर्हृदय बड़ा गमगीन हो उठा। कुछ समय पश्चात् जब पत्नी वियोग का गम कम हुआ तब वह पूर्ण स्नेह के साथ पुत्री रत्नमाला का पालन पोषण करने लगा और प्रतिपल इस बात का ध्यान रखने लगा कि इस मातृ–वियोगिनी रत्नमाला को किसी प्रकार के अभाव की अनुभूति न हो। इसका चेहरा प्रति–पल सूर्य विकासी कमल की तरह खिलता मुस्कराता रहे। इस बात का संकेत उसने अपने सब दास दासियों को भी दे रखा था।

हालांकि बीच बीच में उसके साथी स्नेही वसुभूति को पुनर्विवाह हेतु भी प्रेरित करते रहते। लेकिन वसुभूति का अन्तर्मन विमाता के नाम से ही थर्रा उठता। वह चिंतन करता कि नई पत्नी न मालूम किस स्वभाव की होवे जो मेरी प्यारी इकलौती लाड़ली रत्नमाला के लिए दुःख का निमित्त बन जाय। इसलिए अपने स्नेही साथियों के पुनर्विवाह के प्रस्ताव को टालते हुए, रत्नमाला में सुसंस्कारों का बीजारोपण हो और वह सर्वकलाओं में निपुण बने, इसी ओर अपना ध्यान केंद्रित करके समय व्यतीत कर रहा था।

समय–समय पर सन्त–सतियों के दर्शन, वंदन, प्रवचन श्रवण का लाभ स्वयं भी लेता और अपने साथ अपनी लाड़ली रत्नमाला को भी ले जाता। जिससे उसमें जैनत्व के संस्कार परिपक्व होने लगे। ऐसा करते करते रत्नमाला की वय सोलह वर्ष की हो गई। उसके मन में विषय विकार के प्रति कोई उत्सुकता नहीं जगी थी। पिता वसुभूति ने अनेक तरीकों से उसके मन को टटोलने का प्रयत्न भी किया लेकिन उसने स्पष्ट रूप से पिता वसुभूति को बता दिया कि फिलहाल मेरा हृदय संसार के विषय वासना के दलदल में फंसने हेतु तत्पर ही नहीं हो रहा है। जिसको सुनकर श्रेष्ठि वसुभूति का मन अन्दर ही अन्दर थोड़ा चिन्तित सा रहने लगा। लेकिन वह उन भावों को मन में ही दबाता हुआ चिन्तन करने लगा कि इसकी मनो भावना को डांट फटकार से परिवर्तित करने की चेष्टा करना अनुचित होगा, क्योंकि यह स्वयं सर्व कलाओं में निपुण एवं चतुर है। इसके मनोभावों में परिवर्तन लाना ही है तो इसका सहज उपाय यही हो सकता है कि इसे देशाटन के बहाने यहाँ से बाहर ले जाया जाय ताकि वहाँ के विभिन्न वातावरणों एवं दृश्यों के अवलोकन से इसके मन में संसार से अनुरक्ति पैदा होवे। ऐसा निश्चय करके वसुभूति अपनी सासु एवं रत्नमाला को लेकर कौशाम्बी से निकला और मार्गवर्ती अनेक नगरों का परिभ्रमण करते हुए श्रावस्ती नगरी पहुंचे और व्यापारिक सम्बन्धों के नाते सामंतभद्र श्रेष्ठि के आग्रह पर उनके यहाँ ही ठहरना स्वीकार किया। दो दिन बाद ही कौशाम्बी से आवश्यक समाचार आ जाने से रत्नमाला को वहीं ठहराकर पुनः यहाँ शीघ्र लौटने का आश्वासन देकर श्रावस्ती से कौशाम्बी हेतु सासु को लेकर रवाना हुआ। संयोग से उसके कुछ दिन बाद ही प्रभु के श्रावस्ती आगमन के निमित्त पूर्वोक्त घटना घटी।

वह अपने कक्ष में बैठी–बैठी उस विकट समस्या का समाधान ढूंढ रही थी। इधर समय अपनी गति से प्रवाहित हो रहा था। रात्रि का प्रथम,

द्वितीय, तृतीय प्रहर क्रमशः समाप्त होते होते चौथा प्रहर भी लग गया। बड़ी उत्सुकता से मणिमालिनी का इन्तजार करते हुए चिन्तन कर रही थी कि उसने मिलने का वचन तो दिया लेकिन आई क्यों नहीं। हो न हो उसके सामने भी कोई विकट समस्या उपस्थित हो गई हो। इतने में उसके कान में पांवों की आहट आई जिसको सुनते ही पूर्ण सजग होकर द्वार पर टकटकी लगाकर देखने लगी तो वह एकदम सहम गई, यह देखकर कि यह तो स्त्री की जगह किसी पुरुष ने कक्ष में प्रवेश किया है। आश्चर्य के साथ अपने कक्ष में एक पुरुष के आगमन से वह एक दम सजग हो गई और अपने मनोबल को पूर्णरूप से जागृत करके बोली सावधान! यदि एक कदम भी आगे रखने का प्रयत्न किया तो मैं अपने प्राणों की आहुति दे दूंगी। कौन हो तुम और किस नीयत से इस समय अकेली स्त्री के कक्ष में प्रवेश करने का दुःसाहस किया है। यदि तुम कोई जाति सम्पन्न कुल के हो तो पुनः उल्टे पैरों लौट जाओ।

उस समय उसकी आवाज शेरनी की दहाड़ से कम नहीं थी फिर भी उस आगंतुक ने मन को दृढ़ बनाकर बड़े कोमल शब्दों में कहा–रत्नमाला अन्यथा विचार मन से निकालकर मेरी बात श्रवण करो–मैं अन्य कोई नहीं, मणिमाला का पति सुभद्र हूँ और उसी ने मुझे यहाँ भेजा है।

सुभद्र की यह बात सुनकर तो और कड़कती आवाज में बोली कि खबरदार मैंने ऐसे बहुत से व्यक्ति देखे और सुने हैं कि किसी विश्वस्त व्यक्ति की आड़ लेकर अपनी कुत्सित मनोभावना का पोषण करने हेतु तत्पर होते रहते हैं। मैं ऐसे धूर्तों के मायाजाल में कभी नहीं फंस सकती इसलिए श्रेयस्कर यही है कि मेरे व अपने कुल के गौरव को सुरक्षित रखने हेतु यहाँ से तत्क्षण लौट जाओ।

सुभद्र रत्नमाला के इन शौर्य युक्त वचनों को सुनकर भी उसकी अन्तर्परीक्षा हेतु मुस्कराते हुए कहने लगा–रत्नमाला मैं प्रार्थी बनकर कह रहा हूँ कि ऐसा स्वर्णिम अवसर न खोकर आओ मेरे पास ताकि अपन दोनों एक दूसरे के बाहुपाश में आलिंगनबद्ध होकर स्वर्गीय सुखों की अनुभूति करें।

सुभद्र की इस बात को श्रवण करते ही रत्नमाला का सारा अंग–प्रत्यंग क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठा और वह सिंहनी की तरह गर्जना करते हुए सुभद्र के पास में आकर कहने लगी–अरे कुलांगार! नराधम! क्या कुत्ते की तरह भोंक

रहा है? या तो तू अपने आप चुपचाप यहाँ से चला जा, नहीं तो फिर मुझे तेरी गर्दन को पकड़कर बाहर निकालकर लोगों को इस दुष्प्रवृत्ति का परिचय कराना होगा।

रत्नमाला की इस बात को सुनते ही सुभद्र भिगी बिल्ली की तरह सहम गया और चुपचाप उल्टे पैरों वहाँ से निकल गया। उसके बाद रत्नमाला मन में चिन्तन करने लगी कि जहाँ ऐसे कामुक पुरुष निवास करते हैं, उस स्थान पर रहना अब उचित नहीं है। ऐसा चिन्तन करके अपने कक्ष से बाहर आकर सुभद्र को रोका और उसके पास जाकर बोली– भैय्या! मुझे क्षमा करना। मेरे शीलधर्म के रक्षणार्थ मुझे आपके साथ ऐसा कठोर व्यवहार करना पड़ा लेकिन अब मैं जानना चाहती हूँ आपसे कि इस समय भाभी मणिमालिनी कहाँ होंगी, मैं उससे मिलना चाहती हूँ।

यह सुनते ही सुभद्र का अन्तर्मन भयभीत हो उठा कि कहीं मेरी इस कुचेष्टा का भंडाफोड़ मणिमालिनी के सम्मुख नहीं कर दे, इसलिए वह हाथ जोड़कर आंखों से अश्रु प्रवाहित करते हुए बोला–कि रत्नमाला अभी मणिमालिनी से अचानक मिलने का क्या प्रयोजन है? तब रत्नमाला ने कहा कि बस अब मैं यहाँ से विदा होकर श्रेष्ठि धनदत्त के यहाँ जा रही हूँ। मेरी तरफ से आपको जो कष्ट हुआ उसकी क्षमा चाहती हूँ। ऐसा कहकर वहाँ से शीघ्र निकल आई। जिससे सुभद्र को समझते देर नहीं लगी कि यह मेरे कारण ही यहाँ से निकलने का विचार कर रही है। इस कारण मन ही मन भारी पश्चाताप करते हुए इतना लज्जा का अनुभव करने लगा कि वह भी तत्क्षण यह कहते हुए कक्ष से बाहर निकल गया कि मैं यथा शीघ्र मणिमालिनी को आप के पास भेजता हूँ।

नवम् परिच्छेद

सुभद्र की दशा व दिशा में मोड़

रत्नमाला के कक्ष से निकलकर जाते हुए पुनः उसने मुड़कर रत्नमाला की ओर देखा और नयनों से पश्चाताप के अश्रु प्रवाहित करते हुए हाथ जोड़कर अपने शयनकक्ष की ओर रवाना हुआ। जाते जाते उसके हृदय में पश्चाताप की ज्वाला प्रज्जवलित होकर तीव्र से तीव्र होती गई और वह चिन्तन करने लगा कि यदि आज रत्नमाला इस प्रकार मुझे फटकार नहीं लगाकर यदि थोड़ा सा स्नेह प्रगट कर देती तो मेरे साथ ही उसका जीवन भी कितना पतित हो जाता। फिर मैं नाम का ही सुभद्र रह जाता पर आचरण से तो पूरा कुभद्र बन जाता।

धन्य है उस रत्नमाला को, जिसकी फटकार मेरे लिए आशीर्वाद बन

गई। शायद मेरे आत्मोत्थान में रत्नमाला का ही निमित्त जुड़ा हो। यही कारण लगता है कि उसके दिव्य ब्रह्म तेज मात्र से ही मेरी दुष्प्रवृत्ति पलायन हो गई। वास्तव में आज मैं अनुभव कर रहा हूँ कि धर्म के पास अधर्म (अंधकार) क्षण भर भी नहीं टिक सकता। इसी प्रकार आज मेरी मनोदशा बनी है। वास्तव में आज मेरे लिए तो रत्नमाला गुरु के रूप में ही मार्गदर्शक बनी है।

मुझे मणिमालिनी जैसी पवित्र धर्मपत्नी प्राप्त हुई लेकिन मेरी दुष्प्रवृत्तियों से उसके दिल में भी मैंने कितनी बार चोट पहुंचाई है। इन्हीं अन्तर्भावों में रमण करते करते वह अपने कक्ष में पहुँचा और अपनी पत्नी मणिमालिनी को हड़बड़ाते हुए इतना ही बोल पाया कि तुम यथाशीघ्र रत्नमाला के पास पहुंचो। यह कहते हुए उसकी आंखों से अश्रु धारा प्रवाहित हो पड़ी, जिसे देखकर मणिमालिनी हतप्रभ हो गई।

मणिमालिनी कहने लगी – पतिदेव! क्या बात है? आपके नयनों से अश्रुधारा क्यों प्रवाहित हो रही है? साथ ही आप इतने दिलगीर क्यों हो रहे हैं? क्या कोई आपत्ति या घटना घटित हो गई, यदि गुप्त रखने योग्य नहीं हो तो वह मुझे बताने की कृपा कीजिए। तब सुभद्र ने घटित घटना आद्योपान्त मणिमालिनी के सामने रखते हुए क्षमायाचना की और बोला–मणिमालिनी! अब मैंने निश्चय कर लिया है कि जिस दिन मैं तुम्हारे जैसी धर्मपत्नी का सच्चा धर्म पति बनने की योग्यता प्राप्त कर लूंगा उसी दिन पुनः तुम्हारे पास आऊंगा। उसी साधना हेतु आज मैं तुम्हारे से इजाजत चाहता हूँ। तुम मुझे अन्तर्हृदय से इजाजत देकर विदा करो और यथाशीघ्र रत्नमाला से जाकर मिलो। ऐसा कहकर सुभद्र तत्क्षण वहाँ से निकल पड़ा। अपनी विशाल हवेली, सुख, वैभव एवं वृद्ध पिता की ममता मारकर।

कहाँ जाना? किसके पास पहुंचना? कोई लक्ष्य निर्धारित किये बिना ही अपनी हवेली से निकलकर चल पड़ा। जिस मार्ग की ओर चरण पड़े, उसी ओर चलते चलते ही उसके अन्तर्मन से आवाज प्रस्फुटित हुई कि हे सुभद्र! तुझे अपने आध्यात्म लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ने हेतु इधर उधर भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। तू यदि अपने लक्ष्य में सफल होना चाहता है तो एक मात्र जगदोद्धारक महावीर की ही शरण में जा। इसके सिवाय कोई शरण सत्यभूत नहीं है। वे ही तुझे अनादि आधि–व्याधि व उपाधि से मुक्ति दिलाकर तुझे शाश्वत सुख की उपलब्धि कराने में पूर्ण सक्षम हैं। तू एक बार प्रभु महावीर की चरण शरण में जाकर तो देख। वहाँ तुझे जिस परम सुख की अनुभूति होगी वह तू स्वयं अपने मुंह द्वारा भी अभिव्यक्त नहीं कर

पायेगा।

अरे सुभद्र! तेरी औकात ही क्या है, स्वयं देवराज इन्द्र भी उसे अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं हैं। केवल सीमित शब्दों में ही उनके गुणों का कीर्तन करके अपने आप को कृत कृत्य मान लेता है जिसे शक्र–स्तव कहा गया है। सुभद्र के अन्तरनाद ने उसे एकदम स्तब्ध कर दिया। उसका रोम रोम उल्लसित होने लगा। उसके सारे शरीर में नई चेतना का संचार होने लगा। वह लग गया गहन चिन्तन में और चल पड़ा धनदत्त श्रेष्ठि की हवेली की ओर, जहाँ चारों तरफ प्रभु महावीर के श्रावस्ती आगमन की तैयारी चल रही थी। हर आबाल वृद्ध का हृदय हर्ष के हिलोरें ले रहा था। फिर धनदत्त श्रेष्ठि का तो कहना ही क्या था? उसके तो रोम रोम से हर्ष के फव्वारे फूट रहे थे। इस सारे सुरम्य उत्साहवर्धक श्रद्धा एवं आस्थामय वातावरण को देखकर तो और अधिक से अधिक सुभद्र का मन प्रभु महावीर के प्रति सहज रूप से प्रभावित होने लगा।

दशम् परिच्छेद

मणिमालिनी एवं रत्नमाला का मिलन

सुभद्र की सारी वार्ता को श्रवण करके मणिमालिनी यथाशीघ्र रत्नमाला के कक्ष में पहुंच तो गई लेकिन लज्जा के वशीभूत होने से उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया था। वह बोलने की हिम्मत ही नहीं कर पा रही थी। रत्नमाला को मणिमालिनी की यह दशा देखकर सारी बात समझते देरी नहीं लगी। तब उसने स्वयं आगे होकर उसका स्वागत किया फिर उसकी आंखों से प्रवाहित होने वाले आंसुओं को पोंछने लगी। तब मणिमालिनी और ज्यादा सुबक पड़ी और बोली–रत्नमाला! मेरे पतिदेव के अपराध की मैं क्षमा याचना करती हूँ। आशा ही नहीं, मुझे विश्वास है कि तू मुझे अन्तर्हृदय से क्षमा प्रदान करेगी क्योंकि अब मेरे जीवन का कोई सहारा नहीं है। मेरे पतिदेव तुम्हारे पास से अद्‌भुत प्रेरणा पाकर यह कहते हुए घर से निकल गये कि अब मैं तेरी जैसी धर्म पत्नी का सच्चा धर्म पति बनने की योग्यता प्राप्त करके ही पुनः तुम्हारे पास आऊंगा, नहीं तो नहीं। अब तू ही बता मेरी जैसी हतभागिनी नारी कौन होगी जो पति के जीवित होते हुए भी पति त्यक्ता के रूप में जीवन जीने हेतु विवश होगी। ऐसा कहते कहते मणिमालिनी पुनः सुबक पड़ी। यह देखकर एक बार तो रत्नमाला का भी हृदय भर आया फिर भी हिम्मत करके उसके दोनों हाथ पकड़कर सहलाते हुए अपने वचनों में पूर्ण माधुर्यता लाते हुए बोली–बहिन जरा सोच क्या रोने मात्र से वियोग का दुःख कम हो

जायेगा। नहीं, कभी नहीं। अग्नि में पड़ा घी उस आग को भड़काने में ही सहायक होता है, बुझाने में नहीं। ऐसे दुःख से दुःख ही बढ़ता है, घटता नहीं। इसलिए मेरा कहना मानकर तुम इन वियोग के दिनों को रो रोकर काटने की जगह धर्मध्यान में चित्त लगाते हुए प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर यह मंगल भावना गाओ कि मेरे पतिदेव सद् संस्कारी बनें और यथाशीघ्र पुनः आकर मुझे दर्शन दें। उनके अंतर में सद्ज्ञान का दीप प्रज्ज्वलित हो, जिससे पूर्ण सदाचार मय जीवन जीकर जन जन के आदर्श बनें।

रत्नमाला के ऐसे स्नेहपूर्ण वचनों को श्रवण करने से मणिमालिनी के हृदय को बहुत कुछ सांत्वना प्राप्त हुई और वह बोली–बहिन रत्नमाला! तेरे इस आत्मीय प्रेरणादायक पाथेय से मेरे मन में अनिर्वचनीय शांति की अनुभूति हुई है। साथ ही यह भी दृढ़ विश्वास उत्पन्न हुआ कि पतिदेव अपने वचनानुसार पूर्ण शुद्ध सात्विक जीवन जीने की प्रतिज्ञा के साथ ही पुनः जरूर आकर मुझे दर्शन देंगे। रत्नमाला मणिमालिनी के मुखारविन्द से इन आश्वासन भरे भावों को श्रवण करके प्रसन्नता की अनुभूति करते हुए पुनः पूर्ण धैर्य व आश्वस्त होने की प्रेरणा देते हुए कहने लगी।

बहिन मणिमालिनी अब मैं तुझे अपने हृदय की बात बताती हूं। तुम्हारे परिवार में जो कुछ अशान्ति हो रही है उसका मूल कारण मैं हूं। मेरे निमित्त से ही मणिभद्र जी की उस कैद कोठरी से मुक्ति हुई और यह हिम्मत भी मेरे मन में कैसे उत्पन्न हुई, यह बात भी तुम्हारे सामने स्पष्ट रूप से रखना चाहती हूं, बशर्ते तुम उसे गोपनीय रखने का आश्वासन दो।

रत्नमाला की यह बात सुनकर मणिमालिनी एकदम सतर्क हो गई और रत्नमाला को पूर्ण रूप से आश्वस्त करते हुए उस कारण को बताने का आग्रह करने लगी। तब रत्नमाला कहने लगी–देख बहिन मैं अपने आपको ऐसी हत भागिनी मानती हूं जिसके समान कोई दूसरी हत भागिनी नारी परिलक्षित नहीं हुई। क्योंकि एक तो बचपन में ही मेरी माँ का साया उठ गया फिर मेरे पूज्य पिताजी ने मेरे पालन–पोषण में किसी प्रकार की कमी नहीं रखी उन्होंने तो मेरी हर इच्छा का ख्याल रखा, लेकिन मैंने पढ़ लिखकर बड़ी होने के बाद भी उनकी इच्छा की उपेक्षा ही की और आज तक भी करती आ रही थी। वह इच्छा थी उनकी कि मेरी यौवनावस्था को देखते हुए यथाशीघ्र विवाह करके अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण करने की। लेकिन मैं हर समय इंकार ही करती रही क्योंकि मेरे मन में एक भावना जग रही थी कि मैं ब्रह्मचारी रहकर धर्म संघ की सेवा करूं।

परन्तु पिताश्री व अनेक सम्बन्धियों ने मुझे खूब समझाने की कोशिश की। जब मैं आखिरी दम तक अपने निश्चय पर अटल रही, तब उन्होंने देशाटन का प्रोग्राम बनाया ताकि उसमें अनेक नगरों की यात्रा और वहाँ के वातावरण से कुछ विचारों में परिवर्तन आ जाय । बस इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु हम यहाँ पर आये और कुछ अत्यन्त आवश्यक कार्य के समाचार आ जाने से मुझे आपके भरोसे छोड़कर वे पुनः कौशाम्बी गये थे ।

लेकिन यहाँ आई उसी दिन की एक घटना ने मेरे मन को एक नई दिशा दे दी । वह घटना यह थी कि आपके श्वसुर श्रेष्ठि वसुभूति और आपके ज्येष्ठ रत्नभद्र आपके देवर मणिभद्र को पकड़कर उस कैद कोठरी में बन्द करके पुनः अपने स्थान पर गये। उसके बाद रत्नभद्रजी अपनी पत्नी के पास गये तो उसके चेहरे की थकान को देखकर उसे एक ग्लास शर्बत बनाकर दिया जिसकी एक घूंट मुँह में लेते लेते पत्नी से पूछा कि क्या पिताश्री ने भोजन कर लिया। यह सुनकर उनकी पत्नी ने ज्यों ही कहा कि नहीं किया, तो पत्नी की यह बात सुनते ही उन्होंने शर्बत की ग्लास वहीं रख दी। हालांकि प्यास से उसके कंठ सूख रहे थे फिर भी वो तत्क्षण पिताजी के पास गये और जैसे–तैसे पिताश्री को मनाकर उनको भोजन कराने बिठाने के बाद ही उन्होंने वह शर्बत पिया, यह सारा दृश्य मैंने अपने कमरे के झरोखे से अपनी आँखों से ज्यों ही देखा उसी क्षण मेरे मन में विचार उठा कि कहाँ उन पुत्रों की पिता के प्रति इतनी समर्पण भावना और कहाँ मैं जिस पिताश्री ने मातृपितृ कर्त्तव्य का उत्तरदायित्व वहन करते हुए मेरा पालन–पोषण किया उन पिताश्री की मनो भावना की उपेक्षा करके उनके दिल को कितना ठेस पहुंचा रही हूँ।

बस उसी समय मैंने यह निर्णय ले लिया कि अब पिताश्री की भावना का समादर करते हुए विवाह की स्वीकृति बिना किसी जातीय बन्धन के योग्य स्वधर्मी मिल जाय तो दे देनी चाहिये। उसी के साथ मणिभद्र के प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता गया और मैंने मन में यह संकल्प कर लिया लेकिन फिर यहाँ के वातावरण को देखकर विचार आया कि यह सम्बन्ध जुड़ना असंभव है क्योंकि कौशाम्बी की सारी प्रजा राजा प्रभु महावीर की परम भक्त और जैन धर्म की उपासक है। उसी में हमारा परिवार भी अग्रगण्य है और यहाँ ठीक उसके विपरीत वातावरण परिलक्षित हो रहा है। मणिभद्रजी अंतर् जागरण से संप्रेरित होकर प्रभु स्वागत हेतु तत्पर हुए तो आज उनके साथ कितना घोर अन्याय हो रहा है और इनको अपराधी ठहराकर समाज से माफी मांगने हेतु

विवश किया जा रहा है। यह सरासर अन्याय कैसे सहा जा सकता है?

मैं सच कहती हूँ बहिन मणिमालिनी इसी अन्याय के प्रतिकार हेतु ही मैंने मणिभद्र जी को कैद से मुक्त करने का साहस किया और आगे भी मेरा पुरुषार्थ ऐसा ही जारी रहेगा। चाहे उसमें कितने ही कष्टों के तूफान उठें मैं उनका सामना करके भी मैं उनके साथ ही अपना मार्ग भी प्रशस्त करने का दृढ़ संकल्प कर चुकी हूँ और तुमको भी मैं यही बात कहती हूँ कि तुम भी सत्य के प्रति समर्पित होते हुए प्रसन्नतापूर्वक समय यापन करो। प्रभुकृपा से सब आनंद मंगल ही होगा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

सुभद्र का भाई मणिभद्र से मिलन

इस प्रकार रत्नमाला मणिमालिनी को प्रभु महावीर की महिमा बताते हुए आश्वस्त कर रही थी कि अकस्मात् उसके कानों में भारी कोलाहल की ध्वनि गुंजरित होने लगी। वे दोनों वहाँ से उठकर उस कमरे के बाहर की छत पर आकर खड़ी हुईं तो देखा सामने जो विशाल सुरम्य जेतवन जिसका निर्माण श्रावस्ती के राजकुमार जेतवन ने कराया था। उसी जेतवन में प्रभु महावीर के विराजने हेतु श्रेष्ठि धनदत्त के आग्रह से राजकुमार जेतवन ने स्वयं प्रभु की अगवानी करके ठहरने हेतु निवेदन किया था। इसलिए प्रभु अपने विशाल शिष्य समुदाय सहित वहाँ विराजे हैं और इसी उपवन में देवों ने भव्य समवशरण की भी रचना की है। उसी समवशरण में जन समुदाय व देवगण प्रभु के गुणगान एवं जय जयकार करते हुए पहुंच रहे हैं। उसी का कोलाहल हो रहा है।

उसी जेतवन में मणिभद्र भी प्रभु की उपासना में तन्मय होकर मन में दृढ़ संकल्प धारण करके एकान्त कमरे में साधना हेतु तत्पर हो रहा था कि प्रभु दीक्षित करने की अनुमति प्रदान करें तो मैं दीक्षित होकर श्रमण संघ में प्रवेश करूं। प्रभु महावीर से धर्मप्रज्ञप्ति श्रवण करके धर्म का सत्य स्वरूप उसके अंतःकरण में रम गया था। इसी कारण पूर्व में उसके मुख मण्डल पर हर समय विषाद की जो काली रेखाएँ छाई रहती थीं, वे दूर हो गई थीं। जिसके फलस्वरूप अब उसके चेहरे पर प्रसन्न्ता व परम समता का स्रोत प्रवाहित हो रहा था।

अब उसे संसार की असारता प्रतीत हो चुकी थी। इस कारण उसके हृदय की सारी दुर्भावनाओं को उपशान्त करके उसमें वसुधैव कुटुम्बकम की भावना लहरा रही थी। उत्कृष्ट विरक्त भाव हिलोरें ले रहा था।

कभी कभी उसका अन्तर्मन बोल उठता कि शायद मेरे मन के किसी कोने से यह आवाज झंकृत होती है कि कहीं मतान्तर बुद्धि के प्रभाव से एवं सगे स्नेहियों

के दबाव से तुझे पुनः संयम त्यागना न पड़ जाय फिर भी मणिभद्र का प्रतिपल का यही प्रयास चलता रहता कि मेरा मन जिनाज्ञा आराधना में पूर्णतया दृढ़ीभूत बन जाय ताकि कोई देव दानव, मानव की शक्ति भी मुझे सन्मार्ग से विचलित नहीं कर सके। इसी संकल्प के साथ एक कमरे को बंद करके कोलाहल रहित शान्त वातावरण में एकाग्र चित्त गहन चिन्तन में तन्मय हो रहा था।

इतने में उसके कर्ण कुहरों में दरवाजे के पास पैरों की आहट के साथ ही उसके खटखटाने की आवाज आई। वह अपने स्थान से उठकर दरवाजे के पास आया और ज्यों ही उसने दरवाजा खोला तो देखकर हतप्रभ हो गया अपने बड़े भाई सुभद्र को। उसने उसे प्रणाम किया और बड़े मधुर वचनों से उनके आगमन का कारण पूछा, जिसको सुनते ही सुभद्र फूट फूटकर रो पड़ा।

यह देखकर एक बार तो मणिभद्र भी विह्वल हो उठा। फिर भी मन में धैर्य धरकर बड़े मधुर शब्दों में पूछा–भैय्या! आपकी ऐसी दशा का क्या कारण है? क्या कोई अघटित घटना घट गई। आप इस प्रकार अश्रु प्रवाहित करना छोड़कर मन में धैर्य धारण करके बताने की कृपा करें। पिताजी वगैरह तो सब सकुशल हैं?

सुभद्र को मणिभद्र के इन मधुर वचनों से थोड़ा मन को सम्बल मिला। तब नीचे बैठकर बोला–भाई! मणिभद्र क्या बताऊँ। पहली बात तो जब तू हम सब का परित्याग करके चला ही आया तो फिर पिताश्री के सकुशलता अकुशलता के समाचार पूछने की तुझे आवश्यकता ही क्या है? यदि तुझे पिताश्री व हमारी व कुछ ब्राह्मण समाज व धर्म की चिन्ता होती तो तू ऐसे भगकर आता ही क्यों? तेरे आने के बाद हमारे पर क्या बीती है, उससे क्या तू अनभिज्ञ है।

तब मणिभद्र बोला–भैय्या आप यह क्या कह रहे हैं? क्या आपका अन्तर्मन इस बात का साक्षी दे रहा है कि मणिभद्र हमको उपेक्षा भाव से त्याग करके गया है। भैय्या! उस समय मेरे अंतःमन की दशा कैसी हो रही थी। वह तो सर्वदर्शी प्रभु महावीर के अलावा कोई नहीं जान सकता था। यह तो मेरे महान् शुभ कर्मों का उदय ही समझो कि मातृ–वियोग के बाद मेरी सुध–बुध ही गुम हो गई थी। इस गुमशुम दशा में दिङमूढ़ बनकर मैं घर से निकलकर जिधर पांव मुड़े उधर चल पड़ा और चलते–चलते पहुंच गया उस जीर्ण आम्र उपवन में जहाँ मुझे सहज बिना किसी प्रेरणा या निमित्त के प्रभु महावीर के दर्शन हुए। उनके प्रथम दर्शन मात्र से जो मुझे अन्तर शान्ति की

अनुभूति हुई, उसे अभिव्यक्त करने हेतु मेरे पास कोई शब्द नहीं हैं।

उसी समय मैंने मेरा अन्तर्मन इनके चरणों में समर्पित कर दिया। अब तन से भी समर्पित होकर इनके मुनि संघ से प्रवेश पाने की साधना में रत हूँ। इन्तजार इसी बात का है कि प्रभु मुझे कब मुनि संघ प्रवेश के योग्य समझकर स्वीकृति दें।

प्रभु महावीर के नगर प्रवेश के बाद जब मैं घर पहुँचा तब मुझे पिताजी और बड़े भैया व तुम तीनों ने पकड़कर हवेली के एकान्त कमरे में बन्द करके बाहर ताला लगा दिया था। उस समय आपके चेहरे पर उभरते हुए क्रोधावेश को देखकर मैं कुछ समझ ही नहीं पाया कि आज मुझे किस अपराध का दंड दिया जा रहा है। मैं उसके बारे में खूब सोचता रहा लेकिन कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। मेरे मन में एक एक पल भी प्रभु महावीर की जुदाई से असह्य हो रहा था। रत्नमाला के संयोग से ही मेरी उस कैद कोठरी से मुक्ति हुई, जिससे मैं प्रभु चरणों की उपासना का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। साथ ही आपके मुंह से यह बात श्रवण करके मैं आश्चर्य के साथ आपसे यह भी जानना चाहता हूँ कि मेरे यहाँ आने के बाद किसने उपद्रव खड़ा किया कृपा करके थोड़ा स्पष्ट रूप से बताने की कृपा करें।

बारहवाँ परिच्छेद

मणिभद्र का सुभद्र द्वारा समाधान

सुभद्र ने मणिभद्र की सारी बात श्रवण करके उसके निष्कपट चेहरे से यह तो जान लिया कि न तो यह पिताजी व समाज की उपेक्षा करके यहाँ पर पहुंचा है और न पीछे घटने वाली घटनाओं से विज्ञ है। इसलिए उचित यही होगा कि इसे पीछे वाली घटनाओं के बारे में बता दूं।

ऐसा चिन्तन करके सुभद्र ने कहा – मणिभद्र! यह तो तूने देखा ही है कि महीने भर से हमारे ब्राह्मण समाज के प्रमुख व्यक्ति पिताजी के पास आकर इकट्ठे होते और परस्पर गुप्त मंत्रणा करते थे। उस मंत्रणा का मूल उद्देश्य यही था कि जब से धनदत्त श्रेष्ठि ने प्रभु महावीर को श्रावस्ती नगरी में पदार्पण का निमंत्रण दिया और उन्होंने यहाँ पधारने की स्वीकृति दी, तब से हमारे ब्राह्मण समाज में भारी दहशत हो गई कि उनके यहाँ आगमन होने से हमारी वैदिक संस्कृति पर भारी खतरा मंडरा जायेगा जैसा कि राजगृही में हुआ है।

भगवान महावीर यज्ञादि में धर्म के नाम से होने वाली हिंसा को घोर अनर्थ का कारण बताते हुए मानवों को ''अहिंसा परमो धर्म'' का ही उपदेश देते हैं और उसी को सच्चे सुख की उपलब्धि का कारण बताते हैं। जिस को

श्रवण करके हर जन साधारण उस सत्य को स्वीकार करने हेतु तत्पर होकर जैन धर्म का अनुयायी बन जाता है। कहीं श्रावस्ती नगरी में भी ऐसा प्रवाह प्रवाहित नहीं हो जाय इस दृष्टिकोण से सबने मिलकर यह प्रस्ताव पारित किया कि कोई भी ब्राह्मण समाज का सदस्य महावीर के स्वागत से लगाकर उसकी देशना उपासना आदि में भाग नहीं ले। इसके उपरान्त भी यदि किसी ने ले लिया तो उसे समाज से बाहर कर दिया जायेगा।

इस निर्णय के बाद भी तुम्हें लोगों ने उस जीर्ण आम्रवन में प्रभु महावीर की उपासना करते देखा। साथ ही प्रभु महावीर को तेरे द्वारा श्रावस्ती के निमंत्रण की बात भी उन लोगों के सामने आई। उसी समय समाज के प्रमुखों ने आकर पिताश्री के सामने भारी उपद्रव मचाना प्रारंभ किया। तब ही तेरे घर आते ही पिताश्री और दोनों भाईयों ने इसलिए बंद कर दिया कि तू प्रभु महावीर के श्रावस्ती नगर प्रवेश महोत्सव में भाग नहीं ले सके लेकिन तू तो उस रत्नमाला के निमित्त से मुक्त होकर यहाँ आ गया।

इसके बाद रत्नमाला अपने कमरे में खड़ी थी तब अकस्मात् मेरी दृष्टि उस पर पड़ी। उसके रूप को देखकर मैं अपने मन की विकृत भावना से ज्यों ही उसके निकट जाने की चेष्टा करने लगा, त्यों ही उसने एक सिंहनी सा रूप धारण करके मुझे ऐसी लताड़ लगाई कि मैं उसके सामने तो दूर तेरी भाभी को भी मुंह दिखाने की हिम्मत न कर सका। सिर्फ उससे क्षमायाचना करके तेरी भाभी मणिमालिनी को इतना ही कहकर घर से निकल गया कि अब मैं तेरा सच्चा धर्मपति बनकर ही पुनः तेरे पास आऊंगा। तब तक तू मेरा इन्तजार मत करना।

बस मणिभद्र संयोग से मैं भी दिङमूढ़ बना हुआ ही भाग्योदय से यहाँ तक पहुंच गया हूँ। अब यही चाहता हूँ कि मैं भी उस पाप के प्रायश्चित हेतु प्रभु महावीर की शरण ग्रहण करके प्रभु से धर्म प्रज्ञप्ति श्रवण कर इस असार संसार का परित्याग करके प्रभु चरणों में प्रवृजित होकर आत्म कल्याण के मार्ग पर चरण बढ़ाऊं। ऐसा कहते कहते सुभद्र का कण्ठ अवरुद्ध हो गया और उसके नयनों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो पड़ी।

मणिभद्र भाई सुभद्र की यह दशा देखकर उसके आंसू पोंछते हुए स्वयं भी द्रवित हो उठा और बड़े मधुर शब्दों में बोला–भैया! आपकी उच्च भावना का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ। साथ ही यह विश्वास दिलाता हूँ कि निश्चित रूप से आपकी और मेरी भावना साकार लेगी ही साथ ही सारी श्रावस्ती नगरी का भी निश्चित उद्धार होगा और एक दिन प्रभु महावीर के वचनानुसार यह श्रावस्ती जैन शासन की आधारशिला के रूप में प्रख्यात

होगी। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है इसलिए अब अपन दोनों मन के अन्य विचारों को तिलांजलि देकर यथाशीघ्र कैसे प्रभु महावीर की शरण प्राप्त कर सकें ऐसी मनोभूमिका के निर्माण हेतु अपना पुरुषार्थ जारी कर दें ताकि प्रभु महावीर, जो घट घट के अन्तर्यामी सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं, वे अपने दिव्य ज्ञान में अपने को उनकी धर्म प्रज्ञप्ति का पात्र देखकर अपनी चरण शरण में लेने का हम पर महान अनुग्रह कर सकें। इन्हीं भावों के साथ दोनों भाई उसी कमरे में जम गये और प्रभु महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति पर परस्पर गहन चिन्तन मनन करने लगे।

तेरहवां परिच्छेद

सामंतभद्र द्वारा दोनों पुत्रों के साथ सम्बन्ध विच्छेद –

ज्यों ही यह बात ब्राह्मण समाज में पहुंची कि श्रेष्ठि सामंत भद्रजी का लघु पुत्र मणिभद्र तो प्रभु महावीर की उपासना में गया जो गया, अब तो उनका मझला पुत्र सुभद्र भी जेतवन में पहुंच गया। साथ ही यह बात भी उनके पास पहुंच गई कि कौशाम्बी नगरी का श्रावक श्रेष्ठि वसुभूति जो प्रभु महावीर का परम भक्त है उसकी पुत्री रत्नमाला जिसको भी अपने घर में आश्रय दे रखा है। एक तरफ हमने उसको अपना मुखिया मानकर उसकी अध्यक्षता में ही ऐसा संकल्प लिया था कि कोई भी हमारे समाज का सदस्य महावीर के नगर प्रवेश स्वागतोत्सव से लगाकर उनके उपदेश आदि में भाग नहीं ले और न ही उनसे कोई चर्चा ही करे। यदि कोई करेगा तो वह समाज का अपराधी माना जायेगा। साथ ही उसका सामाजिक बहिष्कार भी कर दिया जायेगा।

इधर आज हम देख रहे हैं कि उन्हीं के दो पुत्र महावीर चरणों में अहर्निश उपासना कर रहे हैं। इसलिए श्रेष्ठ यही है कि उसे समाज की जाजम पर बुलाकर स्पष्ट रूप से पूछ लिया जाय कि या तो वह दोनों पुत्रों से सम्बन्ध तोड़ दे और जो कौशम्बी नगरी के श्रावक वसुभूति की पुत्री को आश्रय दे रखा है उसे घर से यथाशीघ्र निकाल दे और फिर क्षमा मांग ले तो ठीक नहीं तो फिर उसके साथ भी सामाजिक व्यवहार बंद कर दिया जाय।

इस बात को सम्मुख रखकर उसी समय समाज प्रमुखों ने एक व्यक्ति को उसके घर भेजा। उसने वहाँ जाकर पंचों का आदेश सुनाया, जिसको श्रवण करते ही एक बार तो सामंतभद्र मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

पारिवारिक सदस्यों ने कुछ उपचार किया तब उसकी मूर्छा दूर हटी और चिन्तन करने लगा कि जिस समाज के लिए मैंने पूर्वजों से लगाकर आज तक तन–मन–धन सब खर्च किया, आज उसी समाज के समक्ष मुझे अपराधी के रूप में खड़ा रहना पड़ेगा। इस बात का चिन्तन करते हुए हृदय फटने लगा और वे फूट फूट कर रोने लगे। बड़ी मुश्किल से सबके समझाने पर वे पंचों के पास हाजिर हुए। पंचों ने कहा–श्रेष्ठिवर्य सामन्तभद्र जी आप हमारे समाज प्रमुख हैं और सारा समाज आपका प्रमुख के रूप में ही आदर करता था, अब भी कर रहा है और भविष्य में करेंगे, उसमें कोई सन्देह नहीं है, फिर भी उसमें जो कुछ अड़चन पैदा हो रही है वह स्पष्ट है कि आपके नेतृत्व में ही हमने यह प्रतिज्ञा की थी कि वेदद्रोही महावीर के नगर प्रवेश महोत्सव से लगाकर अन्य किसी कार्य में भाग नहीं लेंगे और यदि कोई लेगा तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जायेगा।

इसी के आधार पर जैसा कि विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि आपका मझला पुत्र सुभद्र और कनिष्ठ पुत्र मणिभद्र ये दोनों महावीर की उपासना में लगे हुए हैं। साथ ही तुम्हारे यहाँ कौशाम्बी के श्रावक श्रेष्ठि वसुभूति की पुत्री भी रह रही है। यदि आप उन दोनों पुत्रों का सम्बन्ध त्यागकर उस लड़की को घर से निकाल सकते हो तो समाज तुम्हें क्षमा प्रदान करके पूर्व में जो सम्मान था वही वर्तमान में भी कायम रखने हेतु तैयार है? फरमाईये आपकी क्या भावना है? नियम तो नियम है, जो प्रत्येक सदस्य के लिए समान रूप से लागू होते हैं।

पंचों की यह बात सुनकर विवशता भरे शब्दों में बोला–पंचों का आदेश शिरोधार्य करके मैं अपने दोनों पुत्रों का सम्बन्ध सदा सदा के लिए आज से ही छोड़ सकता हूँ लेकिन उस बच्ची को जब तक उसके पिताश्री नहीं आवें तब तक मैं उसे अपने घर से नहीं निकाल सकता क्योंकि मैं इसे अपना नैतिक कर्त्तव्य समझता हूँ। पंचों में भी स्वीकृति देकर कल सारे समाज की महासभा बुलाने का निर्णय लिया गया। साथ ही उसकी व्यवस्था का सामंतभद्र पर ही सारा भार डालकर समाज के निमंत्रण हेतु समाज के प्रमुखों की नियुक्ति भी कर दी। जिसका मुख्य विषय था कि सारे समाज के समक्ष सामंतभद्र उन दोनों पुत्रों का सम्बन्ध विच्छेद करके अपनी सम्पत्ति का उन्हें अनाधिकारी घोषित कर देंगे। साथ ही सारे सगे–सम्बन्धी में उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखे ऐसी प्रतिज्ञा करेगा।

इस सभा के सभापति होंगे राजकुमार जीतसेन। ऐसी घोषणा

श्रावस्ती के हर मोहल्लों में प्रसरित कराने का निर्णय भी लिया गया। इसको श्रवण करके सुभद्र और मणिभद्र के साथ ही धनदत्त श्रेष्ठि प्रभु चरणों में घबराते हुए आये। उनके मनोभावों को जानकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु महावीर ने उन तीनों को सम्बोधित करके कहा है–हे भव्यों! तुम अपने मन का भय निकालकर अभय बनो। तुम स्वयं देखोगे कि एक दिन इस श्रावस्ती नगरी का नाम जिन शासन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा। प्रभु के इन वचनों से तीनों का मन भय मुक्त तो बन गया लेकिन उन ब्राह्मणों के प्रकोप व निम्न स्तर की हरकतों को देखकर उनका मन भीतर ही भीतर शंकित होने लगा कि न मालूम वे किस समय कैसी हरकत प्रभु के साथ कर गुजरने हेतु तत्पर हो जायें। इस बात का जायजा लेने हेतु वे तीनों जेतवन के बाहर आकर चारों तरफ का वातावरण जानने का प्रयत्न करने लगे।

चौदहवाँ परिच्छेद

श्रावस्ती का राजकुमार व प्रजा प्रभु महावीर के चरणों में –

सूर्योदय के साथ ही ब्राह्मण समाज के लोग सामंतभद्र के यहाँ एकत्रित होने लगे। उनके विशाल प्रांगण के मध्य एक भव्य सिंहासन व उसके आस–पास यथायोग्य नगर के नर नारियों के बैठने की व्यवस्था की गई थी। यथासमय भारी संख्या में ब्राह्मण समाज के नर नारियों के साथ ही राजकुमार जितसेन एक विशालकाय सुसज्जित हस्ती पर विराजकर अपने राजप्रमुखों के साथ सामंतभद्र के प्रांगण में पहुंच गये। अपने ज्येष्ठ पुत्र रत्नभद्र का हाथ पकड़कर कंपित गात्र से सामने जाकर सामंत भद्र ने उनका स्वागत किया लेकिन उसका अन्तर्हृदय फटा जा रहा था जो उसके दोनों नेत्रों द्वारा बाहर छलछला रहा था।

राजकुमार जीतसेन सामंतभद्र का सत्कार ग्रहण कर सभा के मध्य में आये और सारे ब्राह्मण समाज का अभिवादन करके सिंहासनारूढ़ हुए। उनके सामने ही सामंतभद्र व उनका ज्येष्ठ पुत्र रत्नभद्र एक अपराधी की तरह नीचे दृष्टि किये खड़े थे। चारों तरफ से युवराज जितसेन की जय, वैदिक धर्म की जयकारों से नभ गूंजा।

उसके बाद सभा का कार्य प्रारंभ हुआ। सबसे पहले सामंतभद्र पुरोहित जिसकी उम्र 70 वर्ष के आस पास होगी वह खड़ा हुआ और बड़े रोष एवं तोष के साथ ''वेद विहित हिंसा न हिंसा भवति'' इस वेद वाक्य का उच्चारण करते हुए बताने लगा कि यज्ञ में की जाने वाली नरबलि–अश्व बलि आदि में कोई हिंसा जनित पाप आत्मा को नहीं लग कर यज्ञकर्ता व अन्य प्राणियों को भी स्वर्ग अपवर्ग प्रदाता ही बताया गया है, लेकिन आजकल

तीर्थंकर महावीर इनके विरोध में उतरकर लोगों को भड़का रहा है। आप लोग उनकी बातों में न आकर सनातन वैदिक धर्म पर अडोल आस्था रखें और इस श्रावस्ती में महावीर के पांव टिक ही न सकें, ऐसा प्रयत्न करें। यही मेरा आप सब से निवेदन है, जिसके लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हुए और यथाशीघ्र ऐसा करने हेतु छटपटाने लगे।

इतने में उनके कानों में भारी कोलाहल की आवाज गूंजने लगी। आवाज ज्यों–ज्यों तेज होती जा रही थी, उसको सुनकर सबके मन में भारी ऊहापोह मचने लगा लेकिन कोई निश्चय नहीं कर सका कि यह इतना तीव्र कोलाहल किसका है? सब अपनी–अपनी दृष्टि को चारों तरफ दौड़ाने लगे। इतने में जोर से हजारों व्यक्तियों के मुंह से आवाज गूंजने लगी–भगवान महावीर की जय, जैन धर्म की जय। यह सुनकर सब की दृष्टि ही मुड़ गई। सब एकटक देखने लगे। मानो नर–नारियों का सागर ही उमड़ पड़ा हो। सभासद के प्रमुखों ने सबको शान्तिपूर्वक बैठाने का खूब प्रयत्न किया, पर सब निष्फल हो रहा था। जिसको देखकर जैखाली तो हैरान हो गया। वह दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगा और कहने लगा–हाय, यह अदृश्य कौन सी शक्ति का प्रकोप छा गया। ऐसा कहते–कहते धड़ाम से अपने आसन पर सिर पर हाथ देकर भारी शोक मुद्रा में मुंह लटका कर बैठ गया।

इतने में देखते क्या हैं कि स्वयं भगवान महावीर ही इस सभा मंडप की ओर पधार रहे हैं। उनके प्रशान्त मुखमंडल और नयन युगल से स्नेह की अमृतधारा प्रवाहित हो रही थी। देवराज इंद्र स्वयं अपनी ऋद्धि–सिद्धि के साथ उनके चरणों की रज को मस्तक पर लगाकर अपने आपको धन्य मान रहा था। प्रभु महावीर एक गंध हस्ती के समान आगे चरण बढ़ा रहे थे। ज्यों ही उनकी दृष्टि सभामंडप में जन समूह पर पड़ी तो देखते ही देखते सारे सभा मण्डप का माहौल ही बदल गया। जो इससे पूर्व प्रभु महावीर को येन केन प्रकारेण श्रावस्ती से बाहर खदेड़ने की योजना बना रहे थे, वे ही सभा में से उठकर प्रभु चरणों में झुक झुक नमस्कार करके अपने भाग्य की सराहना करने लग गये और प्रभु महावीर की जय से नभ गुंजाने लग गये। यह देखकर जैखाली आदि पंडित तो मन ही मन जलते भुनते हुए वहाँ से किस दिशा में गये कोई अनुमान ही नहीं लगा सका। स्वयं राजकुमार जितसेन तत्क्षण अपने सिंहासन से उठकर प्रभु महावीर के चरणों में झुककर अपने आपको धन्य मानने लगा और स्वतः ही उसके मुंह से प्रभु महावीर की जय, जैन धर्म की जय के शब्द गुंजायमान होने लगे।

प्रभु ने भी उन सब पर कृपादृष्टि प्रसरित की और इस सभा स्थल में प्रवेश करके ज्यों ही एक उच्च स्थल पर खड़े रहकर प्रभु ने पुनः चारों तरफ दृष्टि प्रसरित की तो सारी सभा स्तब्ध और विस्मित नेत्रों से प्रभु की ओर निहारने लगी। प्रभु ने उनको संबोधित करते हुए फरमाया कि हे भव्यजनों! कीचड़ से भरा वस्त्र क्या कभी कीचड़ से शुद्ध होना संभावित है? सभासदों का स्वर गूंजा–असंभव, असंभव त्रिकाल में असंभव। तो क्या अपने सुख की प्राप्ति हेतु अन्य प्राणियों को दुःख देकर सुख की प्राप्ति होना संभव है? पुनः सभासदों की आवाज गूंजी–असंभव, असंभव, असंभव। तो आप स्वानुभूति से चिन्तन करें कि अपने स्वर्ग अपवर्ग की प्राप्ति हेतु यदि कोई तुमको यज्ञ कुंड में होमना चाहे तो क्या तुम सुख का अनुभव करोगे। पुनः आवाज गूंजी–नहीं, नहीं, त्रिकाल में नहीं। इसी प्रकार अब चिन्तन करें कि परम पवित्र वेदों का नाम लेकर उसमें रहे हुए गूढ़ार्थ को समझे बिना ही पशुओं की हत्या करना स्वर्ग अपवर्ग का प्रदाता होगा या नरक का? पुनः एक आवाज उठी–नरक का, नरक का, नरक का। तो मेरे आत्मीयजनों मेरा आपको इतना ही बताना है कि संसार का प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है, कोई मरना नहीं चाहता।

इसलिए यदि आपको सुख एवं स्वर्ग या अपवर्ग प्राप्त करना है तो किसी को मत मारो। कोई आपके सामने मारणान्तिक कष्ट का अनुभव कर रहा हो तो उसकी रक्षा करके उसे भयमुक्त करो अर्थात् अभयदान दो। यही अहिंसा परमोधर्म है। इसी पर अपनी आस्था, प्रतीति और रुचि बढ़ाओ। इतना सा सारगर्भित एवं अति संक्षिप्त भाव फरमाकर ज्यों ही प्रभु चुप हुए कि तत्क्षण स्वयं राजकुमार जितसेन अपने स्थान से उठकर पास बैठे वृद्ध सामंतभद्र का हाथ पकड़कर आगे बढ़ा और दोनों प्रभु चरणों में झुक गये और अश्रुपूरित नयनों से गद्‌गद स्वर में बोले– हे प्रभु! आज आपने हमारे जैसे अधर्मी के अन्तर्चक्षु खोल दिये हैं। हे प्रभु! आप मुझे क्षमा करें और मैं आज यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं और मेरी प्रजा आस–पास में भी जैन धर्म की प्रभावना हेतु तन, मन, धन से समर्पित रहेगी। बस, हे परम दयालु दीन बन्धु! दीनानाथ! मेरे व मेरी प्रजा पर महान अनुग्रह करके आपके इस धर्म संघ में स्थान प्रदान करें।

ज्यों ही यह दृश्य सभासदों ने देखा, सब भाव विभोर होकर अन्तःकरण से भगवान महावीर की जय, जैन धर्म की जय के नारों से नभ मंडल को गुंजायमान करने लगे।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

सामंतभद्र प्रमुख सुलभ बोधि ब्राह्मण समाज ने जैन धर्म स्वीकार किया

यह सारा दृश्य देखकर वृद्ध सामन्तभद्र के नेत्र चुंधियाने लग गये। वह अनिमेष दृष्टि से प्रभु के भव्य स्वरूप को निहारते हुए अन्दर ही अन्दर, घृणा व लज्जा की अनुभूति करता हुआ अपने आपको धिक्कारने लगा और थर–थर धूजने लगा और नयनों से अश्रु प्रवाहित करते हुए अति तीक्ष्ण स्वरों में कहने लगा–हे देवाधिदेव! हे सर्वज्ञ सर्वदर्शी महाप्रभो! अज्ञानतावश धर्मान्धता के वशीभूत होकर जो कुछ आप श्री की अवज्ञा हुई उसके लिए हार्दिक क्षमा याचना करता हूँ।

मुझ अधम द्वारा आपके ऊपर असत्य दोषारोपण करते हुए एवं विभिन्न तौर तरीकों से पवित्र जैनधर्म का अपलाप करते हुए मेरा मन पाप से जरा भी भयभीत नहीं हुआ। हे प्रभु! मेरे जैसी इस पापात्मा पर आप करुणा दृष्टि बरसाइये। आप जैसे पतितोद्धारक भी मुझ जैसे पापी अधम का उद्धार नहीं करेंगे तो फिर हे दयालु, हे परम कृपालु और कौन मेरा उद्धार करेगा?

हे अनाथों के नाथ! आश्रयहीनों के शरण दाता! अब मुझे आपका ही शरण है। इस भव में ही नहीं, भवों भवों में मुझे आपकी शरण प्राप्त हो, यही मेरे अन्तर्हृदय की प्रार्थना है। मैं प्रतिपल आपके चरण कमलों की मकरन्द प्राप्त करके परमानन्द की प्राप्ति करता रहूं। बस यही शक्ति, मेरे हृदय में संवर्धित होती रहे। आपकी इस अमृतोपम देशना रूप क्षीर समुद्र के जल का पान करने के बाद कौन अभागा लवण समुद्र के खारे जल को पीना चाहेगा। हे प्रभु! आपने अल्प समय में गागर में सागर के समान, बिन्दु में सिन्धु के समान धर्म का सार समझा दिया। अब मैं उसी अहिंसा धर्म का आराधन करते हुए आज से पूर्व तक जो मैंने कुदेव, कुगुरु के बताये हिंसा आदि प्रवृत्तियों में धर्म मानकर श्रद्धा प्ररूपणा और स्पर्शना की और उसके विस्तार व संरक्षण हेतु तन, मन, धन से जुटा रहा और आप जैसे सुदेव, सुगुरु व आपके द्वारा प्ररूपित जिनधर्म का विरोध करने में और लोगों को उसके प्रति भड़काने में भी कोई कसर नहीं रखी।

आज आपसे सम्यक्बोध की प्राप्ति करके उस पाप की निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा से उसका परित्याग करता हूँ। साथ ही ऐसे कुदेव, कुगुरु को सन्मान सत्कारपूर्वक देव गुरु बुद्धि से नमस्कार करके उनको आदर सत्कार का भी त्याग करता हूँ।

हे प्रभो! बस आप मेरे को क्षमा प्रदान करके शुद्ध सम्यक्त्व रत्न का दान करके मुझे कृतार्थ करें। मैं आप से यही प्रार्थना अर्थात् निवेदन करता

हूँ ताकि मुझे अन्तर्शान्ति की अनुभूति हो। हे दयालु! मैंने इस धर्मान्धता में क्या क्या अनर्थ कर डाले। मेरा लघु पुत्र मणिभद्र जो मेरा प्राणों से भी प्यारा है उसे भी आपके संसर्ग में आने पर मैंने एक कैद कोठरी में बंद कर दिया। लेकिन वह आपके रंग में ऐसा रंग गया कि न मालूम किस अदृश्य शक्ति के संयोग से अपने आप उस कोठरी के ताले लगे हुए ही रह गए और वह वहाँ से निकलकर आपके चरणों की उपासना में पहुंच गया। वह रहस्य अभी तक रहस्य ही बना हुआ है। इसके साथ ही मेरा मझला पुत्र सुभद्र भी न मालूम किसके निमित्त से घर से निकलकर आपके पास पहुंच गया जो दो दिन पहले तो आपके विरोधियों के साथ रहता था, वह भी आपकी सेवा–आराधना में ही निमग्न हो रहा है।

हे प्रभो! ब्राह्मण समाज की यह विशाल सभा तो इस उद्देश्य से बुलाई कि सामंतभद्र इस विशाल सभा में आकर सबसे क्षमायाचना करके दोनों पुत्रों से सारे पारिवारिक सम्बन्ध विच्छेद की घोषणा कर दे। लेकिन परम कृपालु हुआ ठीक उससे विपरीत। जैसे सिंह गर्जना से सारे वनचर थरथराने लग जाते हैं उसी प्रकार आप जैसे पुरुष सिंह के अतिशय प्रभाव से जोर जोर से आपका विरोध कर रहे थे वे दुलर्भ बोधि अपने आप मैदान छोड़कर भग गये और जो सुलभ बोधि थे राजकुमार जितसेन से लगाकर सभी सदस्य आपके चरणों में नत मस्तक हो गए हैं। ये खड़े हमारे राजकुमार जितसेन से लगाकर और यह खड़ा मैं। आप हम पर कृपा दृष्टि वर्षा कर अपने धर्म संघ में स्थान दें।

तब प्रभु ने उनको आश्वस्त करते हुए धर्म संघ में प्रवेश देकर धन्य किया।

सोलहवाँ परिच्छेद

''श्रेष्ठि वसुभूति का कौशाम्बी में पुनरागमन''

प्रभु महावीर के धर्म संघ में प्रवेश पाकर अधिक से अधिक प्रभावना का संकल्प लेकर सब अपने अपने स्थान पर गये। जब यह बात कौशाम्बी के श्रावक वसुभूति के वहाँ आने पर ज्ञात हुई तो वह भी हर्ष विभोर होकर तत्क्षण सामंतभद्र के पास पहुंचा और बड़ी हर्षानुभूति पूर्वक आज बधाई देते हुए एक साधर्मी भाई के रूप में उसका सत्कार सम्मान करने लगा।

सारे परिवार की कुशल–क्षेम पूछते हुए बोला–रत्नमाला कहाँ है? उसके कारण आपके परिवार वालों को कोई तकलीफ तो नहीं हुई है। यह सुनकर सामंतभद्र बोला–नहीं भाई वसुभूति वह तो बड़ी धर्मनिष्ठ व सुसंस्कारित बाला है और हमारे परिवार का जो जिनधर्म में अनुराग बढ़ा और प्रभु महावीर

का स्वयं का विशाल शिष्य समुदाय के साथ मेरे प्रांगण में चरण पड़ा, उसमें नींव के पत्थर के समान उसी का अन्तरंग निमित्त बना है।

अभी मैं रत्नमाला को बुलाता हूँ, आप विराजिए इस आसन पर। सामंतभद्र ने बड़े सन्मान एवं हर्षानुभूति के साथ श्रावक वसुभूति को आसन पर बिठाया और पुत्र रत्नभद्र को कहा कि जा भीतर और रत्नमाला को आपके आगमन का शुभ सन्देश देकर उसे इनसे मिला दे। रत्नभद्र ने पिताश्री की आज्ञा शिरोधार्य करके आवाज लगाई बहिन रत्नमाला! लेकिन भीतर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला तब उसने घर में पत्नी और सुभद्र की पत्नी के साथ ही अन्य दास दासियों को भी पूछा। सबने पूरी हवेली छान ली लेकिन रत्नमाला का कहीं भी पता नहीं चला। सब हतप्रभ से एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

जब पुनः जोर देकर पूछा तो कुछ दासियों ने बताया कि जब से हमारे आंगन में सभा जुड़नी प्रारम्भ हुई थी, उसके बाद से ही वह हमारी दृष्टि में ही नहीं आई हैं और अब भी सारी हवेली का कोना कोना छान लिया पर कहीं उसका पता नहीं है। यह सुनते ही रत्नभद्र एकदम घबराता हुआ आया और कहने लगा–पिताश्री! रत्नमाला उसके कक्ष में नहीं है। मैंने सभी दास दासी और औरतों से पूछा तो वे बता रहे हैं कि कल समाज की सभा जुड़ी तब से ही नहीं है।

यह बात सुनते ही वसुभूति पर मानों वज्रपात हो गया। वह जोर से रोने लगा, जिसको देखकर सामंतभद्र की आंखों से भी अश्रुधारा प्रवाहित हो पड़ी और वह भी हृदय में भारी अफसोस करने लगा। यथाशीघ्र चारों तरफ अपने नौकरों को दौड़ाया कि जैसे भी हो सारी श्रावस्ती को छानकर पता लगाओ। सामंतभद्र की आज्ञा पाकर नौकर चारों तरफ पहुंचकर खोज करने लगे पर कुछ भी अता पता नहीं लगा। इससे वसुभूति का हाल बेहाल हो गया। रत्नमाला के सारे कक्ष को खोलकर देखा तो सारा सामान वहीं व्यवस्थित रूप से रखा हुआ था।

जब यह बात मणिभद्र को ज्ञात हुई तो वह भी तत्क्षण उसकी खोज में निकल पड़ा लेकिन उसको भी कहीं पता नहीं लगने से वह भी भारी बेचैन हो रहा था क्योंकि उसे अपनी महान् उपकारिणी मानकर एक बार वह उससे मिलकर धन्यवाद देना चाहता था।

इतने में धनदत्त श्रेष्ठि के यहाँ से एक नौकर आया और उसने सामंत भद्र के हाथ में अपने हाथ लाया पत्र उसे पकड़ाया। वह यथाशीघ्र उसे खोलकर पढ़ने लगा। पत्र धनदत्त श्रेष्ठि के हाथ का लिखा हुआ था। उसमें लिखा था कि कौशाम्बी के श्रावक शिरोमणि वसुभूति की पुत्री रत्नमाला कल रात्रि के द्वितीय प्रहर में सुवर्ण गुप्त के अन्तःपुर की कन्याओं के साथ पालकी

में बैठकर मेरे यहाँ आई है। उसको मैंने यहाँ आने का कारण कई तरह से घुमा फिराकर पूछने का प्रयत्न किया पर वह बताने हेतु तत्पर नहीं हुई। सिर्फ इतना ही बताया कि मेरे पिताश्री जब तक कौशाम्बी से नहीं आवें तब तक मैं यहाँ पर ही रहना चाहती हूँ। तब मैंने अपनी कन्या की तरह ही उसे पूर्ण रूप से आश्वस्त करके अपने यहाँ रहने की स्वीकृति दी है। इसलिए किसी बात की उसकी तरफ से चिन्ता नहीं करें, आपका स्वधर्मी धनदत्त।

इसी के साथ एक दूसरा पत्र जो रत्नमाला ने स्वयं अपने हाथ से मणिमालिनी को लिखा था, वह भी मणिमालिनी को बुलाकर उसे देकर कहा–तुम इस पत्र को पढ़कर सारे समाचारों से अवगत कराओ। मणिमालिनी उस पत्र को लेकर अपने कक्ष में चली गई।

धनदत्त के पत्र से एक बार तो सामंतभद्र वसुभूति के साथ ही मणिभद्र को भी कुछ सांत्वना हुई। अब सब मणिमालिनी के पत्र में लिखित समाचारों को जानने हेतु उत्सुक बने हुए थे।

सतरहवाँ परिच्छेद

रत्नमाला द्वारा मणिमालिनी को दिये पत्र के भाव

मणिमालिनी बड़ी उत्सुकता से उस पत्र को लेकर अपने कक्ष में गई और उसे खोलकर पढ़ने लगी, जिसमें लिखा था–

बहिन मणिमालिनी सादर प्रणाम!

मैं आपको सूचना दिये बिना ही यहाँ आई। इस अपराध हेतु मैं क्षमायाचना करते हुए मैं जो आजन्म दुःखी हूँ क्योंकि जन्म के बाद ही मेरी माँ की मृत्यु हो जाने से पिताश्री और नानी की गोद में ही पली बढ़ी लेकिन मैं उनको कुछ भी सुख नहीं पहुंचा सकी। साथ ही मैंने इस बात का भी अनुभव किया कि मैं पूर्ण हतभागिनी हूँ। मैं जहाँ जाती हूँ वहीं कोई न कोई समस्या पीछे लगी रहती है। आप ने स्वयं भी अनुभव किया ही होगा कि जब से यहाँ आई हूँ तब से तुम्हारे पर भी कितनी भारी विपदाएँ आ पड़ी जिनको याद करते ही मेरा हृदय प्रकम्पित हो उठता है।

कल करुणानिधि जगतोद्धारक प्रभु महावीर स्वयं और उनके शिष्यों की चरणरज से तुम्हारा गृह आंगन पवित्र हुआ। उस पावन दृश्य को देखकर मुझे जो आनन्दानुभूति हुई उसे व्यक्त करने हेतु मेरे पास कोई शब्द ही नहीं है। इस बात को पढ़कर आपके मन में यह प्रश्न तो जरूर उठेगा ही कि ऐसी आनंदानुभूति होने पर भी अचानक बिना कुछ कहे ही यहाँ से कैसे चली गई। मैं इस बात के समाधान हेतु ही आपको पत्र लिखने को तत्पर बनी हूँ। बीच

बीच में मन के एक कोने से यह बात भी उभरती है कि सारी बात स्पष्ट नहीं करने में ही भलाई है क्योंकि सारी बात स्पष्ट करने से आपकी आत्मा को भी ठेस पहुंच सकती है लेकिन सारे यथातथ्य को स्पष्ट किये बिना आपके मन में अनेक संकल्प–विकल्प उत्पन्न हो सकते हैं।

ऐसा चिन्तन करके मेरे वहाँ से चुपचाप निकलने के पीछे रही हुई यथातथ्य भावना का भी पत्र में दिग्दर्शन मात्र करा रही हूँ। साथ ही इस बात को आप किसी के सामने प्रकट नहीं करोगी तो मैं आपका महान उपकार मानूंगी। इसलिए इस कारण को स्पष्ट बता रही हूँ। जब प्रभु महावीर का आपके आंगन में पदार्पण हुआ उससे आपके सारे समाज के साथ ही आपके श्वसुर एवं परिवार में जो सम्यक्बोध की सौरभ प्रवाहित हुई और प्रभु के साथ ही आपके श्वसुरादि समाज प्रमुख भी जेतवन पधारे, उसके बाद मुझे आपके गृह में रहना कम अनुचित लगा क्योंकि उसके बाद आपके गृह में अशांति के बादल छंट कर शान्ति का स्रोत प्रवाहित होने लगा। इससे मुझे यह विश्वास हो गया कि आपके पति और देवर दोनों पुनः घर जरूर आयेंगे।

जब वे उस कोटड़ी से छूटकर प्रभु के चरणों में गये थे, उस समय मेरी और उनकी मानसिक स्थिति कैसी थी वह आपसे छिपी हुई नहीं है। ऐसी स्थिति में मेरा वहाँ रहना कितना उचित रह सकता है? साथ ही मैं तो उस समय जो आपके मणिभद्रजी से विवाह की बात कही थी वह भावना भी अब समाप्त हो चुकी है क्योंकि अब मेरे हृदय में विवाह करने के भाव ही नहीं रहे। सिर्फ अब तो आत्म कल्याण अथवा संघ की सेवा करने के भाव ही बन रहे हैं। हालांकि मेरे इन विचारों से मेरे पिताश्री के दिल को भारी ठेस पहुंचेगी, लेकिन साथ ही मुझे इतना विश्वास है कि उनकी धर्म प्रियता अंततोगत्वा मेरे मार्ग को प्रशस्त करने में ही सहायक बनेगी। इसलिए बहिन मणिमालिनी मेरा आपसे इतना ही नम्र निवेदन है कि इस मेरे भाव भरे पत्र को पढ़कर आप वृथा तर्क–वितर्क में पड़कर दुःखित मत होवें। इसीलिए ही मैंने किसी के सामने प्रगट नहीं करने योग्य बातें भी आपके सामने पत्र द्वारा प्रगट कर दी हैं। साथ ही इसके पीछे दूसरा उद्देश्य भी मेरा यह है कि तुम्हारा मेरे प्रति जो सहज स्नेहभाव इन दिनों में जुड़ा उसके कारण अपनी सगी बहन जैसी मानते हुए सोचा कि यदि मेरे मनोगत भावों को उन तक नहीं पहुँचाऊं तो उस स्नेह भाव से उऋण कैसे हो सकूंगी। बस इन्हीं बातों का चिन्तन करते हुए मैंने आपको मेरे मनोगत भावों से ही अवगत करा दिया। अब तो मात्र एक बात का और स्पष्टीकरण कर देती हूँ कि मैं आपके वहाँ श्रेष्ठि सर्वगुप्तजी की सुपुत्री नर्मदा

के साथ में मेरा पुराना परिचय होने से महा–महोत्सव में मिलने से नया परिचय बढ़ जाने से उसी की पालकी में बैठकर यहाँ सकुशल धनदत्त श्रेष्ठि के यहाँ पहुंच गई हूँ। आप मेरी किसी प्रकार से चिंता न करें, इसी निवेदन के साथ।

आपकी प्यारी बहिन रत्नमाला

अठारहवाँ–परिच्छेद

रत्नमाला को वसुभूति का अंतिम आदेश –

मणिमालिनी ने रत्नमाला के उस पत्र को एक बार पढ़ा लेकिन मनोभाव समाहित नहीं होने से दुबारा, तिबारा पढ़ा और उसमें उल्लिखित भावों को समझते हुए इतनी भावुक बन गई कि उनके मुंह से निकल पड़ा– रत्नमाला घबरा मत। मैं भी तुझे किसी स्थिति में छोड़ने वाली नहीं हूँ। ऐसा कहकर उसने दीर्घ श्वास छोड़ी और उस पत्र को अपनी साड़ी के एक कोने में बांधकर अस्पष्ट शब्दों में कहने लगी–हे पति प्राणेश्वर! अब क्या करूं? आपके संबल से जीवन जी रही थी। उस जीवन नैया को आप तो मझदार में छोड़कर चले गये। हाय प्राणेश्वर! अब मैं अपने मन में उठते इस तूफान को किसके सहारे शान्त करूं।

समस्या थी कि स्वतंत्र विचारों वाली रत्नमाला को कैसे बांध कर रखा जाय। आज तो पति का साथ भी नहीं है। ऐसी स्थिति में कौन सा उपाय कारगर हो सकता है। इसका चिन्तन करने लगी कि किसी तरह पतिदेव का पुनः आगमन हो जाय तो मुझे अपने मनोरथ को सिद्ध करने में सफलता मिल सकती है, पर वे अभी तक आये क्यों नहीं हैं? जबकि मणिभद्र जी तो प्रभु की आज्ञा लेकर आ गये हैं।

उसने अनेक व्यक्तियों से पूछा तो किसी ने बताया कि सुभद्र ने प्रभु चरणों में दीक्षा ग्रहण कर ली है और प्रभु आज्ञा से अन्य मुनियों के साथ दूरस्थ विहार करके चले गये। इस बात को सुनकर एक बार तो भारी धक्का लगा फिर भी दिल को मजबूत करके मन में निश्चय किया कि अब इसमें लज्जा रखने से कुछ नहीं होगा। वह उठी और अपनी एक सखी को साथ लेकर उसी के माध्यम से रत्नमाला और मणिभद्र के विषय में अपने श्वसुर को बताया कि इन दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति आकर्षण बना हुआ है।

इसलिए मैं चाहती हूँ कि इन दोनों का सम्बन्ध जुड़ जाय तो मुझे पूरा विश्वास है इससे दोनों कुलों के साथ ही धर्म की गौरवता निश्चित बढ़ेगी।

साथ ही उसके पिताजी भी इसके सम्बन्ध हेतु इच्छुक हैं और इस कुल में निज कन्या को देने में उनको भी मेरे अन्दाज से कोई एतराज नहीं होगा। मणिमालिनी की इस बात को श्रवण करके सामन्तभद्र जी को इसके मर्म को पकड़ने में देर नहीं लगी और वो तत्क्षण वसुभूति जी के पास गये और बड़े हर्षित मन से रत्नमाला द्वारा मणिमालिनी के पत्र में लिखे भावों को जैसे मणिमालिनी ने प्रगट किये, वैसे ही प्रगट कर दिये। वसुभूति रत्नमाला के विचारों का गहन अध्ययन करता रहता था, इस कारण इस बात को सुनकर ऊपरी हर्षानुभूति प्रगट करते हुए गंभीर मुद्रा को धारण करके एकदम स्वीकृति सूचक कोई उत्तर नहीं देते हुए इतना ही कहा कि अपने को पहले श्रावक शिरोमणि धनदत्त श्रेष्ठि के यहाँ चलकर उन दोनों के मनोभावों को समझकर ही आगे बात बढ़ाना उचित रहेगा।

श्रावक वसुभूतिजी की यह बात न्याय संगत समझकर सामंतभद्रजी ने भी सहमति प्रदान की और दोनों चलकर श्रावक शिरोमणि धनदत्त जी के यहाँ पहुँचे। देखते ही धनदत्त जी हर्ष विभोर होते हुए अपने स्थान से उठकर उनके सामने गये और दोनों स्वधर्मियों का हार्दिक स्वागत करके ''जय जिनेन्द्र'' के अभिवादनपूर्वक भीतर लेकर आये और योग्य आसन पर बिठाते हुए बोले–अहो! आज अपने आंगन में स्वधर्मियों की चरण रज को प्राप्त करके तो मैं धन्य हो गया। आपने बड़ी कृपा करके मेरे इस आंगन को पवित्र किया। अब फरमाइये मेरे लायक सेवा सुश्रुषा का कार्य। तब वसुभूति ने कहा कि अचानक रत्नमाला का सामंतभद्र जी के गृह से निकल जाना सबके लिए बड़ा दुःख का कारण बन गया था। इस व्यथित अवस्था में आपके पत्र ने मानों क्षुधावर्षण का कार्य किया। साथ ही आपने मेरी पुत्री को अपने गृह में संरक्षण देकर मेरे ऊपर भारी अनुग्रह किया। इसका आभार मैं किन शब्दों में व्यक्त करूं यह कुछ समझ नहीं आता। तब श्रेष्ठि धनदत्त जी ने कहा भाई वसुभूति जी आप मेरे साधर्मी भाई हैं और साधर्मी भाई की पुत्री तो अपनी पुत्री से भी महत्वपूर्ण होती है। फिर आपकी पुत्री रत्नमाला तो सर्वकलाओं के साथ ही धर्मकला में भी ऐसी प्रवीण है जिसके मेरे आंगन में आते ही मेरा सारा घर ही पवित्र हो गया। मैंने उसकी सारी दिनचर्या देखी तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आगे जाकर वह जिनशासन की भव्य प्रभावना करने वाली होगी। मैंने यह सारी बात जानी कि हमारे साधर्मी बन्धु सामंतभद्रजी व अन्य वेदानुयायियों में आज जो जिनधर्म व प्रभु महावीर के प्रति अनन्य श्रद्धा भाव लहलहा रहा है इसमें रत्नमाला ने भी नींव के पत्थर की तरह कार्य किया है।

ऐसी कन्या और आप दोनों साधर्मियों का मेरे आंगन में शुभागमन को मैं मेरा सौभाग्य मानता हूँ। अब फरमाइये मेरे योग्य सेवा कार्य। तब उन्होंने अपने मन की सारी बात खोलकर शिरोमणि धनदत्त जी के सामने रखी, जिसको सुनकर उन्होंने कहा कि वह अभी जेतवन में ही है। अपन तीनों वहीं जेतवन में चलें ताकि प्रभु दर्शन का लाभ भी मिल जायेगा और उन दोनों से भी बात हो जायेगी।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

धनदत्त श्रेष्ठि के इस अभिप्राय को जानकर तत्क्षण उनके साथ ही दोनों जेतवन की तरफ चल पड़े और पंच अभिगमों को साधते हुए प्रभु के चरणों में पहुंचकर वन्दन करके प्रभु की उपासना में बैठे। प्रभु उस समय शिष्यगण के मध्य विराजमान थे। वहीं मणिभद्र एक मुनिराज के पास उपासना में बैठा हुआ था, जिनको वे मुनिराज फरमा रहे थे कि हे मणिभद्र! तुम्हारे प्रथम आगमन से लगाकर आज तक मैं तुम्हारे मनोभावों का निरीक्षण व परीक्षण कर रहा हूँ, जिससे मुझे यह अनुभव हो रहा है कि तुम्हारे आत्म परिणाम बहुत ही स्वच्छ एवं निर्मल हैं। फिर भी तुम्हारे दीक्षा ग्रहण की काललब्धि परिपक्व नहीं बनी है, इसलिए जब तक काल लब्धि परिपक्व नहीं बने तब तक तुमको संसार में ही जल कमल वत् जीवन जीते हुए जिन शासन की भव्य प्रभावना करने का संकल्प धारण करके सुखद जीवनयापन करना चाहिए और जब काल लब्धि की परिपक्वता बन जायेगी तब तुम निश्चित रूप से संयम ग्रहण करके उत्कृष्ट तप संयम का आराधन कर सब कर्मों का क्षय करके मोक्ष की प्राप्ति करो। यही तुम्हारे प्रति शुभकामना व भावना है।

यह सुनकर मणिभद्र भी उसे प्रभु आज्ञा रूप में ही शिरोधार्य करके वंदन करने लगा। इतने में प्रभु ने वहाँ से विहार कर दिया और मणिभद्र भी वहाँ से चलकर अपने घर आ गया। श्रेष्ठि सामंतभद्र भी प्रसन्नता की अनुभूति करते हुए अपने घर पहुंच गये।

इधर ज्यों ही रत्नमाला के कान में बात पड़ी कि प्रभु मणिभद्र को संयम हेतु काल अपरिपक्वता के कारण उसको दीक्षा देना अस्वीकार करके अन्यत्र विहार करके पधार गये हैं तब वह भी मन में चिन्तन करने लगी कि यदि मैं भी अपने पिताश्री के स्नेहपाश को छिटकाकर यदि दीक्षा लेने का विचार करूंगी तो मुझे भी शायद प्रभु द्वारा यही उत्तर श्रवण करना पड़ेगा। इससे तो अच्छा यही है कि जब तक पिताश्री मौजूद हैं तब तक उनकी सेवा करके ही काल लब्धि की परिपक्वता का इंतजार करना चाहिए। यही यथेष्ट होगा। यह निश्चय करके वह धनपत जी श्रेष्ठि के यहां ही रहने लगी। जब

वह पिता वसुभूतिजी के पास बैठती तब वे प्रकारान्तर से मणिभद्र के गुणों की प्रशंसा करते हुए सामंतभद्रजी की ऋद्धि ऐश्वर्य की बातें करते हुए रत्नमाला के मनोभावों को जानने का प्रयत्न करते रहते, लेकिन रत्नमाला भी कोई कम विचक्षण नहीं थी। वह पिताश्री व सामंतभद्र जी की बातों को सुनकर केवल इतना ही कहकर उड़ा देती कि अभी क्या शीघ्रता है? अभी तो बहुत समय है। जब समय की परिपक्वता बनेगी तो सब अपने आप हो जायेगा। इसी तरह की बातों में दो वर्ष व्यतीत हो गये।

एक बार उसके मन में विचार आया कि यदि पिताजी के कथनानुसार मणिभद्र जी के साथ विवाह की स्वीकृति दी जाय तो वह सुनिश्चित है कि जो मेरे शुभ संकल्पों के अरमान मैंने अपने मन में संजोये वे कभी पूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि एक बार के स्पर्श व दर्शन मात्र से ही मेरा तन, मन सारा कितना रोमांचित हो उठा था, तो दीर्घकाल का उनके साथ सहवास क्या गुल खिलायेगा और उसके बाद उस मोह पाश से छूटना कितना कठिन हो जायेगा। इसलिए श्रेयस्कर यही होगा कि जैसे तैसे दो चार वर्ष व्यतीत करके मैं अपने आप में पूर्ण विश्वस्त हो जाऊं कि अब मुझे संयम मार्ग में चरण बढ़ाने में कोई शक्ति यत्किंचित् भी विचलित करने में कामयाब नहीं हो सकती और मैं भी संयम पथ पर निर्भीकता पूर्वक बढ़ते हुए तप संयम का पालन करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल बन सकूं। इन्हीं भावों के साथ समय व्यतीत करने लगी। उसी बीच में एक दिन वसुभूति ने रत्नमाला को पास बुलाया और आंखों से अश्रु–प्रवाहित करते हुए कहने लगे कि पुत्री रत्नमाला! आज मैं तुझे आखिरी बार अपने मन को बात बता देता हूँ। यदि तूने मणिभद्र के साथ विवाह करना स्वीकार नहीं किया तो या तो मैं आजीवन अनशन धारण कर लूंगा या जहर खाकर अपने जीवन का अंत कर लूंगा। बस अब इससे ज्यादा सुनना और समय व्यतीत करना मेरे से असह्य हो गया है।

पिताश्री के अकस्मात् ऐसे दर्द भरे वचन श्रवण करके रत्नमाला की मानों पावों तले की जमीन ही खिसकने लगी हो। ऐसा उसे अनुभव होने लगा कि वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी बनी हुई भवितव्यता का चिन्तन करते हुए हाथ जोड़कर कहने लगी–पिताश्री मेरे निमित्त से आप इतनी खेदानुभूति क्यों करते हैं? मैं आपके हर आदेश को शिरोधार्य करती आई हूँ और इस आदेश की भी पूर्णरुप से शिरोधार्य करूंगी। लेकिन सिर्फ आप से मेरा इतना ही नम्र निवेदन है कि एक बार मणिभद्रजी के साथ मुझे बात करने की इजाजत देवें। साथ ही जब तक मैं उनसे विवाह करने की स्वीकृति नहीं दूं तब तक किसी के सामने भूल चूक कर भी यह

भाव व्यक्त नहीं करें कि मेरा इनके साथ विवाह होने वाला है।

अपनी लाड़ली पुत्री रत्नमाला की यह बात सुनकर उसने उस पर गहन चिन्तन करके आखिर में उसकी शर्तानुसार स्वीकृति प्रदान कर दी। जिसे रत्नमाला पिताश्री का महान् उपकार मानकर चरणों में झुक गई और श्रेष्ठि वसुभूति ने भी उसको आशीर्वाद प्रदान किया।

बीसवां परिच्छेद

रत्नमाला और मणिभद्र की परस्पर वार्ता –

उसके बाद आत्म संतुष्टि का अनुभव करते हुए धनदत्त श्रेष्ठि के विशाल भवन की छत पर वसुभूति और रत्नमाला दोनों बैठे–बैठे परस्पर बातचीत करते हुए सूर्यास्त के साथ ही नभमंडल में छाई हुई लालिमा का भव्य दृश्य निहार रहे थे। ठीक उसके सामने श्रेष्ठि धनदत्त की सुरम्य वाटिका थी, जिसमें से तरह तरह के फूलों की सौरभ महक रही थी। वे उसका आनन्द भी लेते जा रहे थे कि अचानक एक नौकर ने आकर निवेदन किया–श्रेष्ठि सामंतभद्र जी के कनिष्ठ पुत्र मणिभद्र जी नीचे पधारे हुए हैं और वे आपसे मिलने हेतु उत्सुक हैं। यह सुनते ही वसुभूति हर्ष विभोर हो उठा और नौकर का हाथ पकड़कर नीचे आया, जिसको देखते ही मणिभद्र उनके चरणों में ज्यों ही झुका त्यों ही श्रेष्ठि वसुभूति ने उठकर सीने से लगाया और बड़े स्नेह के साथ उसका हाथ पकड़कर उसे हवेली की छत पर लेकर गया।

वहाँ बिछे हुए एक खाली आसन पर उसे बिठाकर श्रेष्ठि वसुभूति ने पूछा–कहिये मणिभद्र जी! श्रेष्ठि सामंतभद्रजी एवं आपके सारे परिवार में कुशल क्षेम तो वर्त रहा है। साथ ही आपकी धर्म साधना उत्तरोत्तर गतिशील है और रत्नभद्र जी, सुभद्र जी उनका परिवार वगैरह कैसे हैं?

यह श्रवणकर मणिभद्र ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया श्रावक शिरोमणि! जब से प्रभु महावीर के चरण हमारे गृह आंगन ही क्या, सारी श्रावस्ती में पड़े तब से ही चारों तरफ आनन्द मंगल वर्त रहा है और जिन शासन की भव्य प्रभावना हो रही है। आपको यहाँ भी आनन्द मंगल की वर्त रहा होगा। यह सुनकर श्रेष्ठि वसुभूति गद्गद स्वर में बोले – मणिभद्र जी! प्रभु महावीर की कृपा से सर्वत्र आनन्द ही आनन्द वर्त रहा है। आज आप से मिलकर तो आनंद–मंगल में और विशेष अभिवृद्धि ही हुई है। ऐसा कहते हुए वे अकस्मात् अपने स्थान से उठे और यह कहते हुए नीचे उतर गये कि तुम यहाँ बैठो–मैं आवश्यक कार्य से निवृत्त होकर पुनः लौट रहा हूँ। ध्यान रखना मैं जब तक पुनः नहीं लौटूं तब तक यहाँ से चले मत जाना। ऐसा कहकर श्रेष्ठि वसुभूति

नीचे उतर गये।

उस समय सूर्य अस्ताचल की ओर चला गया था। उसकी जगह पूर्णिमा का चंद्रमा उदित होकर अपनी ज्योत्स्ना को चारों तरफ प्रसारित कर रहा था। साथ ही उपवन में खिलते हुए गुलाब, केवड़ा, चम्पा, चमेली आदि पुष्पों की मन्द मन्द सौरभ से भी चारों तरफ का वातावरण सुरभित हो रहा था।

अब वहाँ केवल मणिभद्र और रत्नमाला दो ही बैठे थे, लेकिन किसी के मुंह से कोई शब्द ही नहीं निकल रहा था। दोनों की दृष्टि जमीन पर टिकी हुई थी। आखिर रत्नमाला ने ही हिम्मत करके अपनी दृष्टि ऊपर उठाकर मणिभद्र जी की ओर देखा और उनका मौन तोड़ने हेतु बोली–मणिभद्र जी–उस दिन की भी याद कभी आई या नहीं। यह सुनकर मणिभद्र एक बार तो हतप्रभ होकर सोचने लगा कि क्या जवाब दूं। आखिर हिम्मत करके बोला–हे रत्नमाला! उस दिन की घटना याद क्या आज भी तरोताजा होकर मस्तिष्क में उभर रही है, परन्तु सत्य बात तो यह है कि उस समय का मणिभद्र अब नहीं रहा हूँ। इतना कहकर मणिभद्र लज्जित दृष्टि से रत्नमाला को निहारने लगा। वह उसी मानसिक दृष्टि से निहारते हुए सोचने लगा कि इसी दिव्य मूर्ति ने उस मध्य रात्रि को मुझे उस कैद कोठरी से मुक्त किया था। उस समय के नम्र व साहसिक व्यवहार को देखकर मैं विस्मित हो गया था वह यही मूर्ति है, जिसके सुंदर नयन और विस्तृत केश राशि को देखकर एक बार तो मैं अपने आपको ही भूल बैठा था। उसी मूर्ति के पुनः मुझे आज दर्शन हुए हैं और उससे प्रत्यक्ष वार्तालाप का यह एकान्त सुअवसर अनायास प्राप्त हुआ है। इस प्रकार उस दिन घटित घटना स्मृति में एक–एक करके चलचित्र के समान उसके सामने तरोताजा हो रही थी जिसको मणिभद्र तन्मयता से देखने में एकाग्र बन गया था।

उस तन्मयता को तोड़ते हुए रत्नमाला बोली–मणिभद्रजी! उस समय आप कैसे थे और उसमें क्या परिवर्तन आया? इस रहस्य को तो मैं कुछ समझ नहीं पा रही थी। सिर्फ वे शब्द मेरे कानों में इस समय भी गूंज रहे कि उस कैद कोठरी से छूटकर प्रभु महावीर की चरण शरण में जाते हुए आपने कहा था कि अब पुनः मिलन कब होगा? इस प्रश्न के उत्तर में मैंने क्या कहा था? वह आपकी स्मृति में होगा। इन सब बातों को गौण करके सिर्फ अभी मैं यह पूछना चाहती हूं कि उस समय इस प्रश्न के पीछे आपके क्या भाव थे? किस उद्देश्य से पुनः मिलन की भावना प्रकट की, वह कारण आज मैं आपसे जानना चाहती हूँ।

मणिभद्र स्वयं सावधान होकर बोला – रत्नमाला! निःसंकोच भाव से तुम भी सुनो और मैं भी निःसंकोच भाव से बताना चाहता हूँ कि उस समय जो मेरी अन्तर अभिलाषा थी उसका तो मेरे हृदय में नामोनिशान भी नहीं रहा। मात्र उसकी स्मृति ही रह गई है। वह भी काल के आवरण से धूमिल होने वाली ही है।

हां, इतना जरूर है कि जिस समय तुमसे विदाई लेकर मैं उस कैद कोठरी से मुक्त होकर जेतवन में जाकर प्रभु महावीर की चरण शरण ली उसके पहले चंद्रमा के प्रकाश में तुम्हारा वही मेरी उद्धारकारिणी का मनमोहक चेहरा देखने से मेरे अन्तर्मन के एक कोने में से एक वासना की चिनगारी प्रस्फुटित हुई थी जो प्रभुकृपा से अपने आप ही शमन हो गई थी। परन्तु उस अपराध से मेरा अन्तर्मन क्षुब्ध रहता था। उस क्षुब्धता से मुक्ति प्राप्त करने हेतु तुमसे क्षमा याचना करने के लिए एकान्त अवसर की खोज में था। वह अवसर आज प्राप्त हो गया।

इसलिए सबसे पहले तो मैं उस अपराध की क्षमायाचना तुम से करता हूँ। उसके बाद मैं अपने हृदय की बात बताना चाहता हूँ कि मेरे हृदय की बस एक तमन्ना है कि प्रभु महावीर की चरण–शरण को ग्रहण करके इस असार संसार का त्याग करके अपने आत्म–हित को साधते हुए जगत् के प्राणियों के हित में जितना सहयोगी बन सकूं उतना बनने का प्रयत्न करूं। बस यही एक मात्र तमन्ना है।

इक्कीसवां परिच्छेद

रत्नमाला और मणिभद्र जी की वचन बद्धता –

मणिभद्र के उपरोक्त अन्तर्हृदय के भावों को उन्हीं की वाणी से श्रवण करके रत्नमाला के हृदय में जो चिर संचित चिन्ता छायी हुई थी उसका शमन होते ही उसके चेहरे पर मानो चन्द्रमा की शीतल ज्योत्सना ही प्रस्फुटित हो रही है। ऐसा उसका मुखमंडल दमक उठा। उसे आज ऐसा हल्कापन महसूस होने लगा मानो सिर पर रखा महान भार नीचे गिर गया हो। एक अनिर्वचनीय आनंदानुभूति से उसका हृदय उल्लसित हो उठा और उन्हीं उल्लसित भावों में ही बोल उठी–मणिभद्र जी! आप जिस अपराध की मुझसे क्षमायाचना कर रहे हैं, उस अपराध का तो मेरे हृदय में लेश मात्र भी विचार नहीं आया है कि आपने मेरा कभी कोई अपराध किया हो। कदाचित् आपके मन में यह बात जम गई हो तो मुझे क्षमा करने में कुछ भी संकोच नहीं है।

मैं तो आपसे यही जानना चाहती हूँ कि आपने जो संकल्प धारण किया उसका पालन किस तरह कर सकोगे? क्योंकि जब तक आपके पिताश्री आज्ञा नहीं देंगे तब तक तो आप किसी हालत में संयम ग्रहण नहीं कर सकते और यह भी स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है कि वृद्धावस्था में वे इजाजत दें ऐसा भी

संभव नहीं लग रहा है। ऐसी स्थिति में आप कौन सा मार्ग अपना कर अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करने हेतु तत्पर हैं।

मणिभद्र ने रत्नमाला की यह बात सुनकर कहा–रत्ना जब तक पिता जी आज्ञा नहीं देंगे, तब तक मैं घर पर ही अविवाहित रहकर साधना करना चाहता हूँ। इस बात को सुनकर रत्नमाला के चेहरे पर हताश भावों की रेखाएँ उभरने लगीं, जो मणिभद्रजी से छिपी नहीं रह सकी। उन्हीं विषाद भावों की निवृत्ति हेतु मणिभद्रजी ने बात को मोड़ देते हुए कहा–रत्नमाला! मैंने सुना है कि तुम्हारे पिताजी भी तुम्हारे विवाह हेतु दृढ़ संकल्पित हैं और तुमने विवाह के बन्धन में नहीं पड़कर शासन की सेवा करने का संकल्प धारण किया। अब तुम भी बताओ कि ऐसी परिस्थिति में तुम किस मार्ग को अपनाकर अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा का चिन्तन कर रही हो।

यह सुनकर रत्नमाला बोली कि मणिभद्र जी इसी समाधान हेतु ही तो मैं आपसे यह प्रश्न पूछना चाहती हूँ कि यदि अपन दोनों का सम्बन्ध जुड़ जाय तो दोनों की सारी समस्या ही सुलझ सकती है और अपन दोनों व्यावहारिक रूप से विवाहित जीवन जीते हुए अंतर में अपनी प्रतिज्ञा का दृढ़ता से पालन करते हुए ज्यों ही काल लब्धि की परिपक्वता होगी त्यों ही संयम मार्ग पर चरण बढ़ाने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हो सकती। इसके अलावा मुझे अन्य कोई इस संसार से दोनों की मुक्ति का योग परिलक्षित नहीं होता।

रत्नमाला के इन भावों को श्रवण करके मणिभद्र जी एक बार तो हतप्रभ हो गये फिर गहन चिंतन मनन करते हुए बोले–रत्नमाला! तुमने जो मार्ग सुझाया वह वास्तव में मनन करने योग्य है। वैसे मेरी इच्छा विवाह करने की बिल्कुल नहीं होते हुए एक दूसरे के निमित्त से अपन दोनों का संयम प्रशस्त बने। इस दृष्टि से मैं अब तुम्हारे से एकदम सहमत होते हुए इस पावन प्रसंग पर अपन दोनों प्रभु महावीर से अन्तर्हृदय से यही प्रार्थना करते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी प्रभु हम आपकी शरण में अपने आपको समर्पित करते हुए आपकी साक्षीपूर्वक केवल व्यवहार रूप से विवाह के बन्धन में बंधते हुए भी आत्मशुद्धि के दृढ़ संकल्प के साथ विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें और संयम मार्ग में विघ्न स्वरूप अपरिपक्व काल लब्धि के परिपक्व होने तक सांसारिक जीवन जीते हुए उसकी परिपक्वता होते ही आपके चरणों में दीक्षित होकर जीवन को धन्य बना सकें। ऐसी शक्ति हमें प्रदान करें। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आप करुणानिधान हम पर करुणा बरसा कर हमें शक्ति प्रदान करके एक दिन चरण–शरण में लेकर हमारा उद्धार करेंगे।

इसी प्रार्थना के साथ ही दोनों एक दूसरे से वचनबद्ध होकर परमानन्द की अनुभूति करने लगे। उसके बाद मणिभद्र जी रत्नमाला की ओर दृष्टिपात करते हुए बोले–रत्नमाला! तुम्हारे उन्नत विचारों ने मुझे एक नई दिशा दी। इसके लिए मैं तुझे हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हुए पुनः यथाशीघ्र मिलन की आशा को मन में संजोए हुए तुमसे अपने घर की ओर प्रस्थान करने की इजाजत चाहता हूँ। इस बात को सुनकर रत्नमाला बोली–मणिभद्र जी! मैं आपको घर जाने की भले छुट्टी देती हूँ लेकिन आज भले अपना देह से लग्न नहीं हुआ है पर आत्म लग्न से तो जुड़ ही गये। इतना कहकर बिना किसी अपेक्षा के रत्नमाला वहाँ से उठकर चली गई और मणिभद्र जी श्रेष्ठिवर्य वसुभूति भी वहीं खड़े खड़े इन्तजार करने लगे और जब वे आये तो उनको नमस्कार करके इजाजत लेकर अपने घर की ओर रवाना हो गये।

बाईसवाँ परिच्छेद

मणिभद्र और रत्नमाला का विवाह –

श्रेष्ठिवर्य धनदत्त जी की हवेली से निकलकर मणिभद्र चलकर ज्यों ही अपने घर पहुंचा त्यों ही श्रेष्ठि सामंतभद्र ने पूछा–बेटा! अभी कहाँ से चलकर आ रहे हो? जिसको श्रवण करके मणिभद्र बड़ी नम्रता पूर्वक बोला–पिताश्री! मैं अभी श्रेष्ठिवर्य धनदत्त जी की हवेली से आ रहा हूँ।

बेटा वहाँ किन–किन से मिलन हुआ और वहाँ सबके कुशलक्षेम तो हैं? मणिभद्र ने पूर्ण विनीत भाव से उत्तर दिया–पिताश्री! वहाँ मैं श्रेष्ठिवर्य धनदत्त जी से तो मिल नहीं पाया, लेकिन कौशाम्बी के श्रेष्ठिवर्य वसुभूति और उनकी पुत्री रत्नमाला से मिलन हुआ। जो पहले आपकी हवेली में ही कुछ दिन रह चुके हैं।

सामंतभद्र बोले–बेटा! सच कहता हूँ कि आज जो हम श्रावस्ती वाले जिनधर्म से अनुरंजित हैं यह सब उस रत्नमाला का ही उपकार है क्योंकि मैंने तो तुझे प्रभु महावीर के सानिध्य से वंचित रखने हेतु एक कोठरी में कैद कर दिया था उसमें से मुक्ति दिलाने का श्रेय भी उसी का है। प्रभु महावीर के अतिशय प्रभाव से अब तेरे साथ हम भी जिन धर्म से अनुरंजित हो गये तब मेरे मन में बार–बार यही विचार उठता कि ऐसी जैन धर्म से अनुरंजित बाला यदि अपने घर की सदस्या बन जाय तो हम और ज्यादा जैन धर्म से गहरे अनुरंजित हो सकेंगे। इसमें तेरा क्या अभिप्राय है? पिताश्री के इन शब्दों को श्रवण करते ही मणिभद्र की दृष्टि लज्जावश नीचे झुक गई और उस मौन को स्वीकृति का लक्षण मानकर हर्ष विभोर हो उठे और मणिभद्र भी हर्षानुभूति करता हुआ अपने

कक्ष में चला गया।

उधर रत्नमाला जब मणिभद्र के चले जाने के बाद नीचे आई तब उसके चेहरे पर उभरे हर्ष भाव को देखकर वसुभूति हर्षित हो उठे और तत्क्षण शुभ मुहूर्त में श्रेष्ठिवर्य धनदत्त जी एवं प्रतिष्ठित अन्य व्यक्तियों के साथ पहुंचे और औपचारिक स्वागत समारोह के साथ मणिभद्र एवं रत्नमाला का सगाई दस्तूर करके विवाह तिथि भी निश्चित कर दी।

बस फिर क्या था, दोनों ओर खुशी की लहर व्याप्त हो गई और धूमधाम से विवाह की तैयारी होने लगी। श्रेष्ठि वसुभूति के तो इकलौती कन्या ही थी। वह भी मातृविहीन। साथ ही प्रचुर धन वैभव, बस फिर क्या था सबको पूर्ण हिदायत ही दे दी गई थी कि विवाह में किसी प्रकार की कमी नहीं रखनी चाहिए। फिर तो कहना ही क्या, मानो किसी राजकुमारी की ही शादी हो, ऐसी चहल–पहल सारी श्रावस्ती में मचने लगी।

इधर श्रेष्ठि सामंतभद्र जी की भी खुशी का पार नहीं था। वह एक तो सब से छोटा वह भी मातृविहीन पुत्र और फिर बड़ी मसक्कत के बाद वैराग से राग भाव में, योग से भोग की ओर उन्मुख हुआ है। उसकी खुशी का भी कोई पार नहीं था। उसने भी अपना धन का भंडार ही खोल दिया, जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो किसी राजकुमार का ही विवाह हो रहा हो।

धूमधाम के साथ पूर्ण हर्षोल्लास में मणिभद्र वर वेश में सज–धज कर तैयार हुआ और विशाल रूप से बारात सज–धज के प्रस्थान हुई। श्रेष्ठि सामंतभद्र व सारे परिवार के हर्ष का पारावार नहीं था। बड़े–बड़े श्रेष्ठिवर्यों, राजपुरुषों के साथ ही स्वयं राजकुमार जितसेन भी उस विवाह महोत्सव में शामिल हुआ। सब के मन में एक आश्चर्य की रेखा उभर रही थी। कहाँ मणिभद्र वैरागी के रूप में अभिनिष्क्रमण की तैयारी कर रहा था वही मणिभद्र आज विशाल बारात सजाकर विवाह हेतु जा रहा है।

ज्यों ही बारात सामंतभद्र श्रेष्ठि के निवास से प्रस्थान करके मुख्य मार्गों से होती हुई श्रेष्ठि वसुभूति द्वारा निर्धारित विवाह मण्डप के नजदीक पहुंची तो वर राज को बधाने हेतु सुहागिन बहिनें मंगल गीतों का गुंजारव करती हुई पास आईं और पूर्ण स्वागत सम्मान के साथ विवाह के पूर्व की रस्में अदा करती हुई वर राज को विवाह मंडप में लेकर आई और यथास्थान एक सुसज्जित सिंहासन पर बिठाया।

रत्नमाला भी नव वधु वेश में सजकर मंगल गीतों की गुंजार के साथ विवाह मण्डप में आई और मणिभद्र के पास ही रखे एक सिंहासन पर बैठ गई।

उसी समय पंडित के मंत्रोच्चारण के साथ दोनों का हथलेवा भी पति पत्नी के रूप में प्रणयन हेतु जुड़ गया लेकिन उनको और देखने वालों को क्या पता कि यह सारी औपचारिकता उनको पति–पत्नी के मोह बन्धन में
बांधने के लिए जो निभाई जा रही है वह केवल औपचारिकता ही है।

ये दोनों तो उस महान् आत्मलग्न में बंध रहे जो एक दूसरे के पूरक मोक्ष मार्ग के आराधक बनकर उस शाश्वत सुख प्राप्ति के दृढ़संकल्प के साथ जुड़ रहे हैं। खैर व्यक्ति अपनी दृष्टि के अनुसार ही सृष्टि को देखता है। हुआ यही। सारी औपचारिकताओं की पूर्ति के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। वसुभूति यह सोचकर हर्षित था कि रत्नमाला का विवाह होने से वह बहुत बड़े उत्तरदायित्व के भार से मुक्त हो गया और भाग्य योग से मणिभद्र जी जैसे मुझे एक दामाद की प्राप्ति हुई है। इधर सामंतभद्र जी सोचने लगे कि मेरे घर में एक सुशील सुसंस्कृत रत्नमाला जैसी बहू का शुभागमन हुआ है साथ ही विशाल धन सम्पत्ति भी।

इधर मणिमालिनी के हर्ष का तो पार ही नहीं था। उसे तो आज चारों तरफ खुशी की बहार ही बहार परिलक्षित हो रही थी। एक तरफ उसका पति सुभद्र जी गुरु आज्ञा लेकर पुनः घर आ गया था और रत्नमाला रूपी देवरानी का घर में शुभागमन हो रहा है। इसी हर्ष के कारण उसने मंगल गीतों के साथ रत्नमाला को बधाकर एक चुटकी लेते हुए हर्ष विभोर होकर बोली–आज एक पंछी को पिंजरे में बंद करने में मैं पूरी सफल हुई।

सबने मंगल गीतों की गुंजार के साथ ही विशाल हवेली की तीसरी मंजिल पर सुसज्जित कक्ष में प्रवेश कराया और सब अपने अपने कर्त्तव्यों की अदायगी करके अपने अपने स्थान पर चली गई।

तेईसवां परिच्छेद

सुहागरात में नव दम्पति का सुसंकल्प –

लगभग एक महीने तक विवाह की धूमधाम रही। इसमें विशेषता यह रही कि दोनों ने सगे संबंधियों के साथ ही बहुत से स्वधर्मी बंधुओं को भी निमंत्रण भेजे थे। जिसके पीछे एक ही पवित्र लक्ष्य था कि अनेक स्वधर्मी बंधुओं के चरण हमारे गृह आंगन में पड़ने से हम धन्य धन्य हो जायेंगे।

साथ ही दीन दुःखी जीवों की रक्षा हेतु प्रचुर मात्रा में सहयोग दिया गया था। दोनों की इच्छानुसार सारे कार्यक्रम दिन में ही निवृत्त हुए, जिससे आरंभ समारंभ का पाप कम लगे। पुण्यार्थ कार्यों में भी खूब दान दिया गया। इस प्रकार लौकिक रीत्यानुसार सारी विवाह रस्मों में दोनों ने इस बात की पूर्ण सावधानी बरती कि किसी को उनके अंतर्भावों की निर्लेप दशा का एहसास नहीं

होने दिया। जैसे तैसे दिन अस्त हुआ और रात्रि प्रारंभ हुई तो दोनों सबसे पहले सामायिक आराधना करने हेतु अपने अपने आसन लगाकर बैठे। तीसरी मंजिल पर कोई आ नहीं सके, इस उद्देश्य से पहले ही चारों तरफ की सीढ़ियों के द्वार भीतर से बंद कर दिये गये थे।

दोनों ने विधिपूर्वक सामायिक ग्रहण की। तत्पश्चात् प्रभु महावीर को भक्ति भाव पूर्वक वंदन करके उन्हीं की साक्षी से दोनों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की कि जिस लक्ष्य से अपन विवाह बन्धन में व्यावहारिक तौर पर बंधे हैं, उस लक्ष्य की सिद्धि हेतु सबसे पहले तो अपन दोनों को इस बात की प्रतिज्ञा का पालन करना है कि (1) किसी भी स्थिति में एक दूसरे के अंगों का स्पर्श नहीं करेंगे, (2) साथ ही रात्रि में एक को नींद आने पर दूसरे को जगते रहना है। (3) दोनों जागृत रहें तब तक धर्म चिन्तन के साथ शास्त्रों का अध्ययन करने में ही समय व्यतीत करना है एवं उभयकाल प्रतिक्रमण, सामायिक व पर्व तिथि पर उपवास आदि भी करना है और इस बात की पूर्ण सजगता रखना है कि यह बात किसी के सामने प्रगट न हो।

इस प्रकार दोनों इन भीष्म प्रतिज्ञाओं को धारण करके द्रव्य से गृहस्थ धर्म और भाव से संयम मार्ग का आराधन करने लगे। इसके फलस्वरूप दोनों का देह कांच की हंड़िया में रखे दीपक के समान दैदीप्यमान होने लगा।

दोनों के विवाह बन्धन में बंध जाने के पश्चात् सामंतभद्र एवं वसुभूति पूर्ण निश्चिंतता का अनुभव करते हुए अब अपना शेष समय अधिक से अधिक धर्माराधना में ही व्यतीत करने लगे। जिससे उनके हम उम्र व्यक्तियों के मन में धर्म भावनाएँ जागृत होने लगी और वे सब उन्हीं के साथ पौषधशाला में धर्माराधना करने लगे। साथ ही उनकी धर्माराधना में किसी प्रकार का विघ्न पैदा नहीं हो, इस बात का दोनों श्रेष्ठि प्रतिपल ध्यान रखने लगे।

इस प्रकार समय व्यतीत होते होते जब दो साल व्यतीत होने लगे तब कभी कभी दोनों के मन में पौत्र–पौत्री अथवा दौहित्र–दौहित्री का मुंह देखने की तीव्र तमन्ना हो उठती, फिर भी काल की परिपक्वता के इंतजार में अन्तर्भावों को शमन करके अन्तर्मन को विक्षुब्ध होने से बचाते रहते थे। इस प्रकार दोनों सम्बन्धी पूर्ण आराधना में सजग रहते हुए एक दिन अपना अंतिम समय निकट जानकर संथारा संलेखना सहित पंडित मरण का वरण करके स्वर्ग गमन कर गये।

इसके कुछ समय बाद ही मणिमालिनी के एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। उसके कुछ समय बाद ही दोनों ने उसको रत्नभद्र एवं भाभी लीला की गोदी में रखकर प्रभु चरणों में संयम ग्रहण कर लिया।

उसके कुछ समय बाद जब वह पुत्र कुछ बड़ा हो गया तो रत्नभद्र और लीला भी मणिमालिनी और भाई सुभद्र का अनुकरण करते हुए सारा उत्तरदायित्व मणिभद्र और रत्नमाला पर डालकर प्रभु चरणों में अपने जीवन को समर्पित करके धर्म की भव्य प्रभावना में लग गये।

चौबीसवां परिच्छेद

मणिभद्र और रत्नमाला का संसार त्याग का संकल्प –

श्रावण महीने की अमावस्या हरियाली अमावस के त्यौहार के रूप में मनाई जाती है। उस समय वर्षा ऋतु के कारण चारों तरफ उमड़ घुमड़कर बरसात होने से सारा स्थल जल से सरसब्ज हो जाता है, जिसके फलस्वरूप सारी पृथ्वी हरियाली से आच्छादित ऐसी लगने लगती कि मानों उसने हरे रंग की साड़ी में अपने आपको ही ढक दिया हो।

साथ ही उस समय प्रवाहित होने वाली कामण हवाएँ एक बार तो वृद्धों के मन में भी नई जवानी की तरंगें पैदा कर देती हैं फिर मणिभद्र जैसे युवक का तो कहना ही क्या? वह और रत्नमाला तीसरी मंजिल के एक भव्य एवं सुसज्जित कक्ष में अपने नियमानुसार एक ही शय्या पर सोये हुए हैं। रत्नमाला गहरी निद्राधीन बनी हुई परन्तु मणिभद्र जागृत होते हुए सोते–सोते ही पंच परमेष्ठी का स्मरण कर रहा था। निद्रा में भी भूल–चूक कर भी एक दूसरे के शरीर का स्पर्श न हो जाय इस बात की पूर्ण सजगता रखते हुए भी अकस्मात् मणिभद्र अपनी शय्या से उठकर खड़ा हो गया।

आज उसे अचानक अपने हृदय में मानों कोई कांटा चुभ रहा हो, ऐसा महसूस होने लगा। हालांकि संसार की असारता व अनित्यता का प्रतिदिन सतत् अभ्यास के कारण उस पर वैराग्य का प्रगाढ़ रंग चढ़ा हुआ था, परन्तु आज अकस्मात् बिजली की चमक के समान उसका मन चंचल हो उठा। उसका क्या कारण है, थोड़ी देर तक तो उसे इस बात का भान ही नहीं रहा। फिर एकदम संभल कर अपने मनोबल को दृढ़ीभूत करने लगा। संयोगवशात् पास के वातायतन से हवा का एक ऐसा झपाटा आया जिससे सोई हुई रत्नमाला के वक्षस्थल पर पड़ा हुआ वस्त्र उड़ गया। उसी समय आकाश में बिजली चमकी। उसका प्रकाश ज्यों ही काले कजरारे केशों की राशि के बीच चंद्रमा के समान दैदीप्यमान रत्नमाला के मुख मंडल पर मणिभद्र की दृष्टि पड़ी तो वह हतप्रभ हो उठा और चिन्तन करने लगा – अहो रत्नमाला का ऐसा देवांगना के रूप को मात करने वाला सौन्दर्य।

उससे इसमें मनोबलपूर्वक सद्ज्ञान वारिधि से सिंचित विरल मन में कामदेव ने कैसे प्रवेश पा लिया। जिसके प्रभाव से वह पूर्ण वैराग्य रंग से अनुरंजित वीर मणिभद्र अपनी प्रतिज्ञाओं से स्खलित होता हुआ उसके अधरोष्ठों पर दृष्टिपात करने लगा। उस समय उसके शरीर में ऐसा अपूर्व रोमांच होने लगा जिससे तत्क्षण उसके हृदय में आसुरी व दैविक दोनों शक्तियों में भयंकर द्वन्द्व मच गया। फिर भी उस समय अपने ज्ञानोपयोग से आसुरी प्रकृति को परास्त करके दैविक शक्ति के संबल से उसने पुनः अपने मन को नियंत्रित करके सजग बना लिया।

अकस्मात् पुनः बिजली चमकी और ज्यों ही उसका प्रकाश कमरे में फैला कि अचानक मणिभद्र की दृष्टि रत्नमाला के केशों पर पड़ी जो बिखर कर शय्या के नीचे जमीन को स्पर्श कर रहे थे। उन्हीं केशों के सहारे एक विषधर सर्प शय्या पर चढ़ रहा है। उसको देखते ही मणिभद्र प्रकंपित हो उठा और यथाशीघ्र दिल को दृढ़ बनाकर उसने सर्प को पकड़कर दूर फेंक दिया लेकिन अपना सन्तुलन नहीं रख पाने से अचानक मणिभद्र के हाथ का स्पर्श रत्नमाला के वक्ष स्थल से हो गया और दोनों के श्वासोश्वास परस्पर मिल गये। उसी समय दोनों के कपोलों का भी स्पर्श हो जाने से अचानक रत्नमाला की निद्रा की तन्द्रा टूटी और वह तत्क्षण अपने वस्त्रों को व्यवस्थित करके उठ बैठी और देखने लगी मणिभद्र की ओर।

इधर मणिभद्र का सारा शरीर उस स्पर्श से रोमांचित होकर धूजने लग रहा था जिसको देखकर रत्नमाला बोली–स्वामिन! इस समय यह आत्म विस्मृति का क्या कारण उत्पन्न हुआ? मणिभद्र ने अन्तर्भावों के साथ ही सर्प की घटना के निमित्त से देह स्पर्श व रोमांचित तक की सारी बात रत्नमाला के सामने रख दी।

यह सुनकर गहन चिंतन–मनन करके बोली–स्वामीनाथ! इस घटित घटना से ऐसा प्रतीत होता है, साथ ही प्रभु महावीर की उस वाणी की भी यथार्थता प्रकट होती है कि अग्नि के पास घी कितना ही यतन करो, सावधानी बरतो परन्तु पिघले बिना नहीं रह सकता। यह बात आपके लिए ही घटित हो, ऐसी बात नहीं है। आज के आपके निद्रित अवस्था में भी मेरा स्पर्श हो जाने से मेरे स्वयं की देह में भी रोमांच व प्रकम्पन हो उठा है। इसलिए अब मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अब अपने को इस मोह के दल–दल में पड़े रहना उपयुक्त नहीं है। जिस विवशता में अपन दोनों को यह कठिन मार्ग अपनाना पड़ा था, वह विवशता भी अब समाप्त हो चुकी है, क्योंकि आपके और

मेरे दोनों के पिताश्री का स्वर्गवास हो गया है फिर अब हमको इस मोह के दल–दल भरे संसार में रहने की क्या आवश्यकता है?

मणिभद्र ने भी रत्नमाला की यह बात सुनी तो उसकी अन्तर चेतना भी जागृत हो गई और तत्क्षण बोल उठा–रत्नमाला! सत्य हैं तेरे ये वचन। वास्तव में वैराग्य भाव से अनुरंजित होकर इस दल–दल भरे संसार में रहना कदापि उचित नहीं है, इसलिए मैं स्वयं आज यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस समय के बाद मैं रत्नमाला का पति बनकर नहीं रहूंगा और तुम भी यह प्रतिज्ञा करो कि मैं इसके बाद मणिभद्र की पत्नी बनकर इस संसार में नहीं रहूँगी।

पच्चीसवां परिच्छेद

मणिभद्र और रत्नमाला का निर्वाण –

मणिभद्र की इस प्रतिज्ञा को सुनकर अपने दोनों हाथ जोड़कर बोली–हे प्राणेश्वर धन्य है आपको। धन्य है आपकी इस प्रतिज्ञा को कि देवलोक के देवता भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। आपकी इस आत्मशुद्धि के प्रकाश से सारा त्रिभुवन आलोकित होकर रहेगा। आज मैं आप जैसे प्राणेश्वर को पाकर कृत कृत्य हो गई हूँ। आपकी छत्र–छाया से ही मेरी जैसी अबला इस विवाह बंधन में बंधकर भी अपने जीवन को संसार के कीचड़ से निर्लेप रहते हुए आत्म–विशुद्धि का संबल प्राप्त कर सकी है। हे आत्मवल्लभ! मैं आज अपने भाग्य की जितनी सराहना करूं, उतनी ही कम है। हे नाथ! आपने मेरे अन्तर्मन की वह शक्ति जागृत कर दी है जिसके माध्यम से मैं आपके संयम मार्ग पर बढ़ते चरण चिन्हों का अनुसरण करते हुए मोक्ष की मंजिल को प्राप्त कर सकूंगी। इसलिए अब आप मुझे यथाशीघ्र आज्ञा प्रदान करें। रत्नमाला के इन भावों को श्रवण करके मणिभद्र बोल उठा–रत्नमाला! बस अब ऐसा ही होगा। इसी में हम दोनों का कल्याण निहित है। मैं तुम्हारे इन भावों का स्वागत करता हुआ यही शुभ कामना करता हूँ कि तुम्हारी यह मंगल भावना यथाशीघ्र सफल हो। अब और क्या सोचना और किसकी अपेक्षा करनी है। चलो अभिनिष्क्रमण कर दें बस दो आज्ञा। मणिभद्र की इस बात को सुनकर रत्नमाला एक बार तो हतप्रभ हो गई, फिर संभलकर बोली–नाथ! आज मैं धन्य हो गई। अब करिये यथाशीघ्र अभिनिष्क्रमण की तैयारी। फिर प्रातःकाल के समय ही मणिभद्र ने अपने इष्ट मित्रों एवं सगे सम्बन्धियों व पारिवारिक जनों को एकत्रित करके सबके सामने अपने अभिनिष्क्रमण के अभिप्राय बताकर अपनी सारी सम्पत्ति का एक मणिभद्र रत्नमाला परमार्थ ट्रस्ट कायम करके उनमें से राजकुमार जितसेन सहित जो

पूर्ण विश्वस्त व्यक्ति थे, उनको ट्रस्ट का सदस्य बनाकर इस संपति का किन–किन परमार्थ कार्यों में सदुपयोग करना इसका निर्देश देकर बड़े विनम्र शब्दों में सबसे आज्ञा देने का आग्रह किया।

यह श्रवण कर के चारों तरफ हाहाकार मच गया। सब आश्चर्य के साथ अश्रुपात करने लगे और यह बात भी सामने आई कि केवल अपने पिताश्री की आत्म सन्तुष्टि हेतु ही हमने परस्पर विवाह करना स्वीकार किया था लेकिन उसके बाद भी हम संयमित जीवन जीते हुए आज उसको साकार रूप देने हेतु अभिनिष्क्रमण करके प्रभु महावीर के चरणों में पहुंचकर संयम स्वीकार करना चाहते हैं। बस आपसे क्षमायाचना करते हुए यही कामना करते हैं कि आप जिनधर्म पर अपनी आस्था दृढ़ रखते हुए इसके अधिक से अधिक विस्तार हेतु तत्पर रहें, क्योंकि यही सार है, बाकी सब असार है। इन्हीं भावों के साथ जय महावीर.....।

ज्यों ही यह बात जनता तक पहुंची, सब आश्चर्यचकित होते हुए उसी हालत में पहुंच गये। सामंतभद्र की उस विशाल हवेली के प्रांगण में स्वयं राजकुमार भी यह सन्देश सुनते ही पहुंच गये वहाँ और समझाने लगे अनेक तरह से। जब उन पर उसका भी कोई भी असर नहीं पड़ा तब सब जुट गये अभिनिष्क्रमण की तैयारी में। दो विशाल शिविकाएँ तैयार करके दोनों को उस पर बैठाकर उन शिविकाओं को अपने कंधों पर उठाकर चल पड़े प्रभु महावीर जहाँ विराजते उस राजगृही की दिशा में।

श्रावस्ती से राजगृही की दूरी तय करके हजारों नर–नारी जय–जयकार करते हुए प्रभु महावीर के चरणों में उनके दर्शन–वन्दन के पश्चात् राजकुमार जितसेन कहने लगा–प्रभु लीजिये यह श्रावस्ती की शिष्य–शिष्या रूप भेंट स्वीकार।

प्रभु ने काल की परिपक्वता को देखकर दोनों को अनुमति प्रदान की। दोनों प्रभु को वंदन करके ईशान कोण में गये और पंचमुष्टि लोच करवाकर श्रमण–श्रमणी वेश को धारण करके प्रभु चरणों में पहुंचकर वन्दन करके संयम दान की अभ्यर्थना करने लगे। तब प्रभु उन पर महती कृपा करके उन दोनों को संयम दान देकर अपने श्रमण–श्रमणी तीर्थ में प्रवेश दिया।

उसके बाद वे दोनों प्रभु आज्ञानुसार संयम की आराधना करते हुए भव्य प्राणियों का उद्धार करने लगे और अन्त में घनघाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान, केवल दर्शन की प्राप्ति के साथ ही सर्व कर्मों का क्षय करके सिद्ध बुद्ध अवस्था को प्राप्त करके मोक्ष में चले गये।

इति शुभम्.....।